न्तसाहित्य प्रकाशनका षष्ठ उपहार

महाराजश्री का एक परिचय

ब्र॰ प्रेमानन्द 'दादा'

एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति

सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्टका षष्ठ उपहार

•

महाराजश्री
का
एक परिचय

•

पूज्यपाद अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराजकी संक्षिप्त जीवन-रेखायें

•

ब्र. प्रेमानन्द 'दादा'

प्रकाशनाधिकारी :
ब्र. प्रेमानन्द 'दादा'
सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट
'विपुल'
२५५-ए/१६, रिज रोड,
मलबारहिल, बम्बई–६ (WB)
फोन : ७७९७६

न्यौछावर—पच्चीस नये पैसे मात्र

मुद्रक :
आर. बी. गुप्ता
चन्द्र प्रिंटिंग प्रेस, कालबादेवी, बम्बई–२.

निवेदन

कई वर्षोंसे पूज्यपाद अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराजकी जीवनीका अभाव खटकता रहा। पत्रकार, लेखक, भक्त और जिज्ञासु—सभीको इसकी अपेक्षा थी। कई बार लिखनेका प्रयत्न किया, असफल रहा। फिर महाराजश्रीसे तथा अपने परिचितों और साथियोंके सहयोगसे सुन-समझकर महाराजश्रीके व्यक्तित्वके महोदधिसे जो कुछ भी रत्न बीन सका, इस पुस्तकमें रखे। आपके पास महाराजश्रीके जो भी संस्मरण, उपदेश, पत्र हों, कृपया हमें दें। हम उन्हें भविष्यके प्रकाशनोंमें स्थान देनेका प्रयत्न करेंगे। यह पुस्तक, यों तो छपनेमें बहुत महँगी हो गयी है; फिर भी अधिकसे अधिक लोगोंके हाथों तक पहुँचानेके लिये इसकी न्यौछावर मात्र पचीस नये पैसे रखी गयी है, जिसपर किसी भी प्रकारका कमीशन नहीं दिया जायगा।

भागवत जयन्ती
संवत्. २०१९

—ब्र. प्रेमानन्द 'दादा'

पूज्यपाद अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज

जन्म और शैशव

भारतवर्षके पवित्रतम वाराणसीमण्डलके एक भाग महाइच परगनेमें भगवती भागीरथीके पावन तटसे अनतिदूर, महराई नामक ग्राममें, सरयूपारीण ब्राह्मणवंशमें महाराजश्रीका जन्म संवत् १९६८ श्रावणी अमावस्या तदनुसार शुक्रवार २५ जुलाई १९११ को, पुष्य नक्षत्रमें हुआ। आपके पिता-पितामह सनातनधर्मी, सदाचारी एवं वेदशास्त्रोंके विद्वान् थे। महाइच परगनेमें पचासों ग्रामोंके वे गुरु थे। धर्मनिर्णय और न्यायमें उनकी प्रतिष्ठा थी। उनलोगोंने अपनी सनातनपरम्पराके अनुसार महाराजश्रीके संस्कार किये। इस प्रकार महाराजश्रीमें शास्त्रश्रद्धा और धर्मपक्षके वीज वाल्यावस्थासे ही हैं।

महाराजश्रीकी सात वर्षकी वयमें ही पिताश्रीका देहावसान हो गया। उन्हें अब भी अपने पिताश्रीकी मधुर आकृति और श्रुतिमनोहर उच्चारणका किञ्चित् स्मरण है। वे भावपूर्ण शैलीमें संस्कृतश्लोकों एवं रामायणका पाठ करते थे। उनके देहावसानके अनन्तर इनके पालन-पोषणका सारा भार माताजी एवं पितामह पर पड़ा। माताजी जब रामचरितमानसका पाठ करतीं और

उनके नेत्रोंसे प्रेमके आँसू ढुलकते, तब बालक शान्तनु-विहारी भी सजल लोचन हो जाते और अक्षरोंको पहचाननेकी चेष्टा करते। इस प्रकार मानसपर ही अक्षरारम्भ संस्कार हुआ। बहुत-से चौपाई, दोहे कण्ठस्थ हो गये। अपने पितामहके पास पढ़नेवाले विद्यार्थियोंके सम्पर्कमें उनकी स्मरणशक्तिका विकास हुआ कि जो सुनते कण्ठस्थ हो जाता। आठ-नौ वर्षकी अवस्था तक सत्यनारायण कथा, दुर्गापाठ, मुहूर्तचिन्तामणि आदि पूरे-के-पूरे याद कर लिये और दस वर्षकी अवस्थामें लघुकौमुदी, रघुवंश, तर्कसंग्रह आदिका स्वाध्याय कर लिया। इनके पितामहने ही इनके जन्मसे पूर्व बड़े भाईकी मृत्यु हो जानेपर व्रजमें जाकर शान्तनुविहारीजीकी पूजा करके पौत्रकी याचना की थी। उसीके फलस्वरूप प्रार्थनाके ठीक नौ मास पूर्ण होनेके दिन जन्म होनेके कारण वे इन्हें शान्तनु कहकर पुकारा करते थे और इनका नाम शान्तनुविहारी पड़ गया था। उन्हींने दस वर्षकी वयमें सिंहासन पर बैठाकर तिलक किया, माला पहनायी और पहले-पहल श्रीमद्भागवतका पाठ कराया। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि तबसे अबतक सारे जीवनमें श्रीमद्भागवत एक सुहृदके समान उनका साथी रहा है और अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष, यश, प्रतिष्ठा देकर उनका पालन-पोषण करता रहा है। उन्होंने श्रीमद्भागवतको आत्मसात् कर लिया है। वह भागवत हैं, भागवत वह हैं।

*

अध्ययन

महाराजश्रीकी स्कूल-शिक्षा केवल 'ब' क्लास तक हुई। अब तो वे 'स्कूल' शब्द को 'ऋ' का लोप हो जानेसे 'ऋषिकुल' शब्दका अपभ्रंश बताते हैं और 'क्लास' को 'कलांश'। उन दिनोंके दो संस्मरण वे बड़े प्रेमसे सुनाते हैं। एक बार उन्होंने चाकू अपनी धोतीकी फेंटमें लगा लिया और भूल गये। थोड़ी देरमें अपने अध्यापकसे चाकू चोरी चले जानेकी शिकायत की। सब बालक खड़े किये गये और डाँट पड़ी। एक बालकके बतलानेपर चाकू इन्हींकी फेंटसे निकला। इन्हें सबके सामने लज्जित होना पड़ा। ये अब कहते हैं कि असल वस्तु खोयी नहीं है, उसके खोनेका भ्रम है। यह भ्रम ही अपने और दूसरेके दुःखका कारण है। भ्रम मिट जाय तो असल (अविनाशी) वस्तु तो अपना आत्मा ही है।

दूसरी घटना इस प्रकार है कि पाठशालामें निरीक्षक आया हुआ था। उसके सामने बालकोंकी परीक्षा हुई। इन्होंने पट्टीपर आठ + छः = चौदहके स्थानपर तेरह लिख दिया। अध्यापक ने डाँटा—'तुम्हें यह किसने सिखाया है?' महाराजश्री अब

कहते हैं—'भूल किसीके सिखानेसे नहीं आती है, अपने-आप आती है। उसे दूर करनेके लिये सिखाना पड़ता है। अपने स्वरूपका अज्ञान किसने सिखाया ? यह अनादि है। दूर कैसे होगा ? गुरु द्वारा प्राप्त वेदोक्त तत्त्वज्ञानसे।'

वैसे पाठशालाके शिक्षकगण महाराजश्रीके पिता-पितामहके शिष्य ही होते थे। इनके पाठशालामें आनेपर पहले वे प्रणाम कर लेते थे, पीछे पढ़ाते थे। कुछ ऐसे श्रद्धालु भी थे जो इनके पिताके देहावसान, जो कि स्वयं सिर फटकर सैकड़ों आदमियोंके सामने योगियोंके समान हुआ था, के अनन्तर शरीरमें रोग होनेपर इनके चरणामृतका पान करते थे और उनका रोग मिट जाया करता था। उन लोगोंकी यह श्रद्धा तो थी ही, पौराणिक शान्तनुके चरित्रमें भी ऐसी ही बात मिलती है।

★

वाराणसीमें

वाराणसीमें अध्ययन करते समय जिन विद्वानोंके सम्पर्कमें ये आये, वे सभी बड़े आस्तिक एवं भगवद्भक्त थे। पंडित रामभवनजी उपाध्याय महावैयाकरण थे। पंडित काशीनाथजी निष्ठावान् वेदान्ती थे। पंडित रामपरीक्षण शास्त्री सम्पूर्ण दर्शनोंके चमत्कारी पंडित थे। स्वामी मनीषानन्दजी प्रसिद्ध विद्वान् सन्त थे। इनके सत्संग, स्वाध्याय और अनुसरणसे मन और बुद्धिमें पवित्रता एवं तीक्ष्णताका सञ्चार हुआ। गंगास्नान, अन्नपूर्णा, विश्वनाथका दर्शन और राममन्दिरमें जाकर पंडित भूपनारायणजी मिश्रसे प्रतिदिन श्रीमद्भागवतका श्रवण नित्यकर्म बन गया। भागवतीजी आपके सम्बन्धी तो थे ही, विशेष कृपा भी रखते थे। दोपहरके विश्रामके समय भी भागवतके कठिन स्थलोंका स्वाध्याय कराया करते थे। इस प्रकार कोई छः वर्ष तक वाराणसेय संस्कृत कालेजमें अध्ययन करते-न-करते पितामहका देहावसान हो गया और इन्हें अध्ययन छोड़कर घरपर आना पड़ा और खेती गृहस्थी तथा गुरुवृत्तिका आश्रय लेना पड़ा।

वैराग्यका बीज

पितामह स्वयं तो ज्योतिषी थे ही, ज्योतिषशास्त्रपर उनकी बड़ी आस्था थी और बड़े-बड़े ज्योतिषशास्त्रियोंके साथ उनका सम्पर्क भी। उन्होंने महाराजश्रीकी कुण्डली भी दिखायी। मारकेश शनैश्चरका दशाभोग था। सबने कहा कि प्रबल अनिष्टका योग है, बालकका बचना कठिन है। वह उन्नीस वर्षकी अवस्थामें ही पड़ता था। पितामहकी मृत्युके अनन्तर महाराजश्रीके मनमें बार-बार मृत्युकी कल्पना उठती और मृत्युका एक आतङ्क-सा मनमें छा जाता। वे घरसे भाग-भागकर अयोध्या, ऋषिकेश, चित्रकूट आदि स्थानोंमें चले जाते, महात्माओंसे मिलते और मृत्युसे बचनेकी युक्ति भी पूछते। अच्छे-अच्छे महात्माओंने कहा कि प्रारब्धसे प्राप्त मृत्यु से बचनेका उपाय तो हम नहीं कर सकते; किन्तु ऐसा ज्ञान दे सकते हैं जिससे मृत्युकी विभीषिका सर्वदाके लिए मिट जाय। वस्तुतः ऐसा ही हुआ। महाराजश्रीके अन्तःकरणमें अमृतब्रह्मका आविर्भाव हुआ और मृत्युकी काली छाया सर्वदाके लिये दूर भाग गयी। उन्हीं दिनों महाराजश्रीने स्वामी मंगलनाथजी आदि महात्माओंके दर्शन किये थे।

★

साधनका प्रारम्भ

महाराजश्रीके गाँवसे चार-पाँच मील दूर गंगातटपर परमहंस रामकृष्णके प्रशिष्य स्वामी श्री योगानन्दजी महाराज निवास करते थे। महाराजश्री उनसे श्रीमद्भागवतका श्रवण करके बहुत ही आनन्दित हुए और उनसे दीक्षा ग्रहण करनेकी इच्छा प्रकट की। उन्होंने वेदान्तके श्रवण-मननकी प्रेरणा दी। इसपर महाराजश्रीने गोस्वामीजीकी चौपाई उन्हें सुनायी—

'भरि लोचन बिलोकि अवधेसा
तब सुनिहउं निरगुन उपदेसा।'

वे बहुत प्रसन्न हुए और गायत्रीका चौबीस लाख पुरश्चरण पहले करवाकर तब श्रीकृष्णमन्त्रकी दीक्षा दी। इसी श्रीकृष्ण-मन्त्रके अनुष्ठानसे महाराजश्रीके जीवनमें महान् परिवर्तन हुए। श्रीकृष्णदर्शनपर्यन्त उपासनाकी सिद्धि होनेपर स्वयं भगवान्ने ही तत्त्वज्ञानकी ओर उन्मुख किया। अबतक गंगातटके अनेक सन्तोंसे महाराजश्रीका परिचय हो चुका था और बुद्धि श्रीकृष्ण-दर्शनके फलस्वरूप पदार्थावगाहिनी हो चुकी थी। शास्त्रके रहस्य इस ढंगसे खुलते जाते जैसे परदोंकी परत-पर-परत फटती जा

रही हो। महाराजश्री कहते हैं कि 'शास्त्रने मेरे सम्मुख अपनेको निरावरण कर दिया है। मैं शास्त्र और धर्मकी प्रत्येक बातको हितकारी, युक्तियुक्त और उचित मानता हूँ।' वे कहते हैं— 'शास्त्रके अक्षर-अक्षर और पंक्ति-पंक्ति ठीक हैं। 'यह श्रीकृष्ण-कृपासे प्राप्त प्रतिभाका ही फल है।'

जिन दिनों महाराजश्री स्वामी योगानन्दजी महाराजके सम्पर्कमें थे और मन्त्रानुष्ठान कर रहे थे, घरमें किसीसे कहे-सुने विना स्वामीजीके पास कर्णवास चले गये। वे पक्के घाटमें राधा-कृष्णके मन्दिरके ऊपर ठहरे हुए थे। महाराजश्री भी उन्हींकी सेवामें रहने लगे। कपड़े—बर्तन धोना, पानी भरना, सफाई करना—सभी सेवा करते थे। प्रतिदिन दस हजारसे अधिक श्रीकृष्णमन्त्रका जप भी करते थे। उन दिनों एक विचित्र अनुभव हुआ—जब वे एकान्तमें भजन करनेके लिये बैठते तब ऐसा जान पड़ता मानो घरके लोग माता-पत्नी आदि उनके सामने प्रकट हो गये। आँखोंसे झर—झर आँसू गिर रहे हैं और कह रहे हैं कि 'हम तुम्हारे विना दुःखी हैं। शीघ्र-से-शीघ्र घर आ जाओ'। जब महाराजश्रीने श्री स्वामी योगानन्दजीको यह बात सुनायी तो उन्होंने कहा कि 'यह सब मनका खेल है। मन भजनकी एकाग्रतासे बचनेके लिये यह सब बखेड़ा रचता है। वे लोग स्वस्थ हैं। चिन्ता मत करो, भजनमें मन लगाओ।' उनके कहने

पर भी महाराजश्रीके मनमें पूर्ण सन्तोष नहीं हुआ। वे कुछ दिनोंके बाद लौटकर घर आये। वहाँ सब लोग स्वस्थ प्रसन्न एवं निश्चिन्त थे। असलमें बात यह थी कि घरके लोगोंके मनमें किसी साधुके पास गंगातट जानेकी कल्पना ही नहीं थी। वे लोग समझते थे कि वे बिहार प्रदेशमें इमामगंज अपने शिष्योंमें गये हैं और वहाँसे बहुत-सा वस्त्र एवं रुपया लेकर आयँगे। जब उन्हें महाराजश्रीका ठीक-ठीक वृत्तान्त ज्ञात हुआ तब वे दुःखी हुए और उनकी दृष्टिसे इतने दिन व्यर्थ गये। उस समय महाराजश्रीके चित्तपर यह छाप पड़ी कि हमारे मनमें दूसरोंके प्रेम और दुःखकी कल्पना सर्वथा एकाङ्गी होती है और दूसरे लोग जब खूब आनन्दमें होते हैं, हम उनके दुःखी होनेकी कल्पना करके दुःखी होते रहते हैं। यह भजनका विघ्न है और साधकोंको इससे सावधान रहना चाहिये।

इन्हीं दिनों एक और घटना घटी थी। महाराजश्री आठ—नौ वर्ष की वयमें ही एक दूरके सम्बन्धीके घर गये हुए थे। वहाँ एक सज्जन मिले। उन्होंने बहुत प्रेम किया। उनके प्यारका ऐसा संस्कार चित्तपर पड़ा कि अबतक उनकी बहुत याद आती थी। इसलिये महाराजश्री उनसे मिलनेके लिये गये; परन्तु उन्होंने तो पहचाना ही नहीं। आठ-नौ वर्षके कालने दोनोंके शरीर और मनमें बहुत बड़ा अन्तर डाल दिया था। याद दिलानेपर भी

उनको कुछ भी स्फुरण नहीं हुआ। महाराजश्रीके चित्तपर इसका यह असर (जो कभी न सरके) पड़ा कि मन अपने-आप ही बहुत-से सम्बन्धों एवं प्रियताओंकी कल्पनाका जाल बुन लेता है और उसमें अटकता-भटकता रहता है। कहीं न कहीं लटक जाना उसका स्वभाव है, वस्तुस्थिति से उसका कोई सम्बन्ध नहीं होता।

यह छोटी-छोटी दोनों घटनायें वैराग्यकी वृद्धिमें कारण बनीं।

घरमें

महाराजश्रीके पिता और भाइयोंकी मृत्यु हो जानेके कारण पितामहके मनमें कुछ भय समा गया था। वे स्वयं ज्योतिषशास्त्रके बहुत बड़े विद्वान् थे। अपने पौत्रकी कुण्डलीमें मारकयोग देखकर वे वंश-परंपराकी रक्षाके लिये बहुत चिन्तित थे और काशीके विद्वानोंने भी उनके मतकी पुष्टि कर दी थी। इसलिये उन्होंने महाराजश्रीका विवाह बारह वर्षकी वयमें ही कर दिया था। उन्नीस वर्षके पहले सन्तान भी हो चुकी थी। उन्नीस वर्षकी अवस्थामें मारकेश ग्रहका तो कोई प्रभाव नहीं पड़ा; परन्तु महाराजश्रीने मन-ही-मन उसी समय घर-गृहस्थीके सम्बन्धका परित्याग कर दिया। इनकी घर-गृहस्थी अपने स्थानपर अब भी भरी-पूरी है। वे लोग सभी तरहसे सुखी हैं। मैं वहाँ स्वयं जाकर देख आया हूँ और वे लोग भी कभी-कभी आकर महाराजश्रीके दर्शन कर जाते हैं। महाराजश्री एक-दो बार स्पेशल ट्रेनसे तीर्थयात्राके समय अपने गाँवकी ओर से निकले तो बारह-पन्द्रह सहस्र जनता इकट्ठी हो गयी। वहाँके बड़े-बड़े लोगोंने आकर स्वागत-सत्कार किया। वहाँकी निर्धन जनता अपने पलक-

पाँवड़े बिछा देती है। अपनी-जन्मभूमिके प्रदेशमें शायद ही कोई महात्मा लोगोंका इतना श्रद्धा-भाजन हो।

जिन दिनों महाराजश्री ग्रहयोगके भयसे आक्रान्त थे, उन्हीं दिनों वहाँके कानूनगो जे. सिंहसे परिचय हुआ। वे जन्मजात सत्पुरुष थे। उनके साहचर्य, उत्साह और सच्चरित्रतासे महाराजश्री को बहुत प्रेरणा मिली। दोनों साथ-साथ सन्तोंके दर्शन करने जाते, परस्पर योग, भक्ति एवं वेदान्तकी चर्चा करते। पीछे तो उन्होंने महाराजश्रीसे गायत्रीकी दीक्षा ग्रहण करली और गुरु-भाव रखने लगे। आजीवन श्रद्धालु एवं उच्चकोटिके ब्रह्माभ्यासी रहे। उन्हींके साथ महाराजश्रीने गंगातटके सिद्ध सन्त श्री मोकलपुरके बाबा, काशीके बाबा गुलाबदास एवं मधईपुरके बाबाका चिरकाल तक अनुपम सत्सङ्ग-लाभ किया।

★

सिद्धोंके सम्पर्कमें

मोकलपुरके बाबा पचास वर्षसे भी अधिक समय तक गंगाजीकी गोदमें रहे। स्वयं गंगाजीने प्रकट होकर उनके लिये अपने बीचमें स्थान दिया था। वे आगे-पीछेकी गुप्त-प्रकट सब बातें जान जाया करते थे। वे दूसरोंके मनकी बात बता देते थे, तत्काल वर्षा करा देते, आँधी रोक देते थे, लोगोंके रोग मिटा देते थे। वहाँकी जनताके लिये वे कल्पवृक्ष थे। महाराजश्रीने अपनी आँखों उनकी सिद्धियाँ देखीं। उन्होंने महाराजश्रीको उपदेश किया था कि 'घाससे मांस और मांससे घास बनता है। इसीका नाम संसार है। यह गंगारूप महामायाकी गोदमें उन्मज्जन-निमज्जन करता रहता है। वह बांगड़ (परमात्मा) इसमें रहकर, इसको छुए बिना सब कुछ टुकुर-टुकुर देखता रहता है; क्योंकि वह जानता जो है कि यह दीखने वाला पसारा, यह सम्पूर्ण मायाका खेल-मेल मुझसे पृथक् नहीं है।' दूसरी बार उन्होंने कहा था—'गुड्डू, करने-धरनेसे संसार कटता नहीं, हटता नहीं और सटता नहीं। बिना किये-धरे इतना हो जो गया है। इसको मिटाना हो तो इसके मूल मर्मको जानना पड़ता है। अधिष्ठान-ज्ञानके बिना अविद्या एवं तन्मूलक संसारकी आत्यन्तिक निवृत्ति नहीं होती।'

मथईपुरके बाबा भी बड़े सिद्ध पुरुष थे। उन्होंने ग्यारह वर्ष तक कटनीसे कुछ दूर एक पहाड़ी गुफामें समाधि लगायी थी। वे कम खाते, कम मिलते, कम बोलते। महाराजश्री उनके सत्सङ्गके लिये बारम्बार उनके पास जाते। वे ध्यानकी शिक्षा देते थे। वे कहते थे कि—'यह मनुष्यका शरीर रेफमय है। जिस जोड़से देखो, 'र' ही 'र' मिलेगा। अपनेको रेफमय चिन्तन करके व्यक्ति, जाति, भाषा और धर्मका भाव छोड़ दो। फिर भावनात्मक रेफका ध्यान छोड़कर अपने निराकार द्रष्टास्वरूपका चिन्तन करो। छोटे-बड़े सभी नाम, रूप एवं कर्मोंका अर्थात् दृश्यमात्रका निषेध कर देने पर जो अपना द्रष्टा स्वरूप बच रहता है, वह ब्रह्म ही है।'

★

सन्तोंमें प्रसिद्धि

एक बार महाराजश्री घरमें किसीसे कुछ कहे बिना चित्रकूटके एकान्त वनमें भजन करनेके उद्देश्यसे निकल पड़े। वे प्रयागमें झूसीके सुप्रसिद्ध ब्रह्मचारी प्रभुदत्तजीसे मिलनेके लिये गये। ब्रह्मचारीजीने बड़े प्रेमसे उन्हें रोक लिया। बिना किसी पूर्व निश्चय और पूर्व संकल्पके उन्होंने मौन ग्रहण कर लिया और फलाहार करके रहने लगे। कई महीनों तक उनके नाम-धाम, अध्ययन, साधनका किसीको पता भी नहीं चला। ब्रह्मचारीजीको जब इनके पाण्डित्यका पता चला, तब उन्होंने धीरे-धीरे विष्णुपुराण और श्रीमद्भागवतका प्रवचन प्रारम्भ करा दिया। फिर भी ये प्रवचनकालके अतिरिक्त किसीसे सम्भाषण नहीं करते थे। वहीं पहले-पहल श्री उड़ियाबाबाजी महाराजके दर्शन हुए और उनके साथ वेदान्त सम्बन्धी अनेक प्रश्नोत्तर हुए। श्री उड़ियाबाबाजी महाराजने बहुत ही स्नेह दिया और खांडेके सत्सङ्गके लिये आमन्त्रित करवाया, जहाँ गंगातटके प्रसिद्ध सन्त षड्दर्शनाचार्य दण्डीस्वामी श्री विश्वेश्वराश्रमजी महाराज, श्री करपात्रीजी महाराज, श्री हरनामदासजी महाराज आने वाले थे। सच पूछा जाय तो प्रयागके छः सात महीने भक्त, विरक्त, महन्त,

मण्डलेश्वर एवं ब्रह्मनिष्ठ सन्तोंसे परिचय एवं सत्सङ्गकी दृष्टिसे बहुत ही महत्त्वपूर्ण रहे। वहींसे ब्रह्मचारीजीके साथ श्री अवधकी अविस्मरणीय यात्रा हुई। श्री हरिबाबाजीके (बाँधपर) दर्शन हुए। उन्हींके साथ गोरखपुरके संवत्सरव्यापी अखण्ड संकीर्तनमें श्रीमद्भागवतपर प्रवचन करनेके लिये जानेका सुअवसर प्राप्त हुआ। गोरखपुरमें 'कल्याण'के सम्पादकमण्डलमें महाराजश्री सात वर्षतक रहे। इनमें परमार्थ सम्बन्धी शास्त्रोंके स्वाध्याय, विभिन्न मत, सम्प्रदायोंके आचार्योंका सत्संग एवं सबसे अधिक भाई हनुमानप्रसादजी पोद्दारके स्नेह-सौहार्दका आस्वादन प्राप्त हुआ। वहीं रहकर अनेक निबन्धों एवं ग्रन्थोंका लेखन, श्रीमद्भागवत आदि ग्रन्थोंका अनुवाद एवं स्पेशल ट्रेनसे देशव्यापी तीर्थयात्रा आदि महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न हुए। महाराजश्री अब भी कभी-कभी श्री जयदयाल गोयनकाके अध्यात्मज्ञान, श्री हनुमानप्रसादजीके भक्तिभाव, गोस्वामी चिम्मनलालजीके सौजन्य एवं गम्भीर पाण्डित्य का स्मरण करते हैं और उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। कहना न होगा कि 'कल्याण' एवं गीताप्रेसके द्वारा महाराजश्रीने अपनी भक्ति-प्रेम सम्बन्धी मधुर अनुभूतियों, तत्त्वज्ञानके आवरण-भञ्जक रहस्यों एवं धर्मके मर्मका उद्घाटन करके मुक्त हृदयसे जनतामें वितीर्ण किया, जिससे भगवत्तत्त्व-जिज्ञासु देशके कोने-कोनेमें लाभ उठाते रहे हैं, उठा रहे हैं। 'कल्याण'के सम्पादन विभागमें काम करते समय या उसके आगे-पीछे वहाँसे आपने किसी प्रकारका कुछ भी वेतन आदि कभी स्वीकार नहीं किया।

★

संन्यासकी ओर

गोरखपुरमें निवास करते समय ही वाराणसी निवासी स्वामी श्री ब्रह्मानन्दजी महाराजकी प्रसिद्धि श्रवणगोचर हुई। वे एकान्तवासी एवं ध्यानके प्रबल अभ्यासी थे। दर्शनार्थियोंको चार-चार बार लौटनेके बाद बड़े सौभाग्यसे दर्शन मिलते थे। बड़े-बड़ोंको भी बिना दर्शन किये ही लौट आना पड़ता था। श्री करपात्रीजी महाराजने कुछ महीनों तक विद्वत् संन्यासी रहनेके अनन्तर उन्हींसे दण्ड ग्रहण किया था। वे तबतक ज्योतिष्पीठके शंकराचार्य पदपर अभिषिक्त नहीं हुए थे। महाराजश्रीने वहाँ जाकर उनका दर्शन किया। फिर तो बार-बार उनके पास जाते थे और वे बाल्यावस्थासे ही किस प्रकार अपना विरक्त एवं ध्यानमय जीवन व्यतीत कर रहे हैं और क्या-क्या अद्भुत घटनायें उनके जीवनमें घटित हुई हैं, यह सब सुनाते। महाराजश्रीने उनसे दण्ड ग्रहण करनेकी इच्छा प्रकट की, उन्होंने सहर्ष स्वीकार किया और कुछ नियम बताये। महाराजश्रीने उसके बाद सम्पूर्ण भारत वर्षकी तीर्थयात्रा की। दो-तीन वर्षों तक यथाशक्ति उन नियमोंका पालन करते रहे। एक बार महाराजश्री प्रयागमें त्रिवेणी स्नान

करके बाहर निकले तो देखा कि सामने ही स्वामी श्री ब्रह्मानन्द सरस्वतीजी महाराजका शिविर लगा हुआ है। अब वे शंकराचार्य हो चुके थे। महाराजश्रीने उनके शिविरमें प्रवेश करके कहा—'अब मैं आ गया हूँ।' उन्होंने कहा—'ठीक है।' और सन् १९४१–४२ की माघ शुक्ल एकादशीका संन्यास-मुहूर्त रख दिया गया। बीचमें महाराजश्री पण्डित मदनमोहनजी मालवीयको श्रीमद्भागवत सुनानेके लिए काशी गये।

महामना पंडित मदनमोहन मालवीयके प्रति महाराजश्री के मनमें बाल्यवास्थासे ही बड़े आदरका भाव था। काशीमें विद्याध्ययन करते समय पंडित श्री रामभवनजी उपाध्यायके साथ वे प्रयागमें मालवीयजीकी सनातनधर्म सभामें सम्मिलित हुए थे। उसी वर्ष श्रीविष्णु दिगम्बरने वहाँ गीता ज्ञानयज्ञ भी किया था। मालवीयजी पण्डितोंकी सभामें अछूतोंकी समस्यापर (उन दिनों हरिजन नाम नहीं रखा गया था) जब बोलने लगते, उनकी आँखोंसे टपाटप आँसू गिरने लगते। उपाध्यायजीने उनके प्रस्तावका विरोध किया, तब उन्होंने पाँव पकड़ लिये। महाराजश्रीने मानस मर्मज्ञ पण्डित रामपलटजी रामायणीके पास देखा कि एक साधारण टाटपर बैठकर मालवीयजी रामकथा श्रवण कर रहे हैं। झूसी एवं गोरखपुरके अखण्ड संकीर्तनमें भी मिलना हुआ। मालवीयश्रीने गोरखपुरमें महाराजश्रीका भागवत प्रवचन सुना और वहीं आज्ञाकी कि 'तुम कभी काशी आकर

मुझे श्रीमद्भागवत सुनाना।' प्रोफेसर पंडित जीवनशंकर याज्ञिकके द्वारा समयका निश्चय हुआ और संन्यास ग्रहणके तीन दिन पूर्व महाराजश्रीने उन्हें ऊखलबन्धन लीला सुनायी। उनके मुखपर भावोंका चढ़ाव-उतार देखते ही बनता था। कभी रोमांच, कभी अश्रुपात। अन्तमें बोले—'भई, तुमने तो मुझे बहुत आनन्द दिया। मैं निहाल हो गया।'

और काशीसे प्रयाग आकर महाराजश्री पण्डित शान्तनुविहारी द्विवेदीसे स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती हो गये। वे बताते हैं कि—'संन्यास ग्रहण करनेके दिन ही मैने स्वप्न देखा कि मैं एक ऊँचे सिंहासन पर बैठा हुआ हूँ और मेरे पिता, पितामह वेदके मन्त्र बोलकर मेरा अभिषेक कर रहे हैं।'

बात तो बादकी है; परन्तु इसी प्रसङ्गमें लिख देना अनुचित नहीं होगा। ऐसा देखनेमें आया है कि जो लोग परस्पर मतभेद रखते हैं, ऐसे दोनों पक्षके लोग महाराजश्रीसे प्रेम और उनका आदर करते हैं। उदाहरणार्थ—भारतके प्रसिद्ध सन्त श्री करपात्रीजी महाराज और मालवीयजीका सर्वदा मतभेद रहा। वे हरिजन समस्यापर एकमत न हो सके; परन्तु महाराजश्री से जैसे मालवीयजीने भागवत श्रवण किया वैसे ही श्री करपात्रीजी महाराजने भी। एक बार ऋषिकेशकी कोल घाटीमें ऊखलबन्धन सुना। वृन्दावनमें श्री राधाकृष्ण धानुकाके घरपर

महाराजश्रीको बुलाकर उन्होंने स्वयं नियमपूर्वक गोपीगीतका प्रवचन सुना। वम्बईकी लक्षचण्डीमें तेईस दिनतक भागवत प्रवचन करवाया। वे महाराजश्रीको पूर्ण वात्सल्यकी दृष्टिसे देखते हैं। कभी-कभी इनके पाण्डित्यकी प्रशंसा भी करते हैं और कभी-कभी सबसे मेलजोल कर लेनेके स्वभावको फटकारते भी हैं; परन्तु दोनोंका प्रेमसम्बन्ध अखण्ड है; क्योंकि दोनों ही ब्रह्म और धर्मके स्वरूप-निर्णयके सम्बन्धमें मन्त्रब्राह्मणात्मक अपौरुषेय वेद और तदनुकूल शास्त्रसमूहको अकाट्य प्रमाण मानते हैं। इसीमें दोनोंकी एकता है जो हमेशा बनी रहेगी।

महाराजश्री बतलाते हैं कि 'संन्यास ग्रहण करते समय या उसके अनन्तर मुझे यह अनुभव नहीं हुआ कि इस संन्याससे मेरे स्वरूपमें कोई विशेषता आ गयी है; क्योंकि मुझे तो पहले ही अपने निर्विशेष स्वरूपका बोध हो चुका था और मैं ब्राह्मण हूँ कि मानव, गृहस्थ हूँ या संन्यासी—यह सारी विशेषताएँ बाधित हो चुकी थीं। इसीसे मुझमें गृहस्थाभिमानके स्थानपर संन्यासाभिमानने अपना स्थान नहीं बनाया। हाँ, जब तक शरीर है तब तक जैसे शरीर बाधित है, वैसे ही संन्यास भी बाधित रूपसे रहे। वह एक व्यावहारिक वस्तु है, उसका कोई पारमार्थिक सत्त्व-महत्त्व नहीं है।

वस्तुतः बात यह है कि इस दण्ड-ग्रहणसे भी दस-बारह वर्ष पूर्व सन् १९३० के लगभग महाराजश्री एकबार कनखलमें निवास

कर रहे थे। वहाँ महात्मा शंकरानन्दजीको उन्होंने श्रीमद्भागवत के सप्तम, एकादश स्कन्ध तथा रास पंचाध्यायीका श्रवण कराया। अन्तमें महात्माजीने इन्हें एकान्तमें ले जाकर कहा—'आओ, तुम्हें इस प्रवचनकी दक्षिणा दूँ।' और उन्होंने संन्यासके प्रैष मन्त्र का उच्चारण करवाया और कहा कि 'तुम साक्षात् ब्रह्म हो। तुम स्वयं कल्याणस्वरूप हो। अब से तुम चाहे किसी भी आश्रममें, वेष-भूषामें, घर या बाहर रहना, अपने को जीव कभी मत मानना। पाप-पुण्य, सुख-दुःख, अपने लोक-लोकान्तर गमन और परिच्छिन्नता को स्वीकृति मत देना। यह सब अविद्याकी रचना है। तुम नित्य मुक्त हो।' तभीसे महाराजश्री अपनेको गृहस्थ-संन्यासी कुछ नहीं मानते थे; क्योंकि यह तो जीव-धर्म है। इसलिए दण्ड ग्रहण करनेपर भी ब्रह्ममयी वृत्ति ज्यों-की-त्यों बनी रही; क्योंकि ब्रह्मज्ञान के अनन्तर किसी प्रकारका अभिमान नहीं रहता।

महाराजश्री दण्डग्रहणके अनन्तर मध्यप्रदेशके जंगलोंमें चले गये; परन्तु ज्योतिष्पीठाधीश्वर श्री शंकराचार्यजी महाराजने शीघ्र ही वहाँसे बुला लिया और बड़े स्नेहसे अपने पास ही रहनेका आग्रह किया। वे कभी-कभी अपनी सिद्धियों और वैभवकी चर्चा किया करते और महाराजश्रीसे कहते कि 'तुम अब यह सब सम्भालो।' कई बार उन्होंने एकान्तमें कहा कि 'इस पीठका शंकराचार्य तुम्हें ही होना पड़ेगा।' जबलपुरकी बड़ी-बड़ी सभाओंमें वे स्पष्ट घोषणा करते—'करपात्री और अखण्डानन्द, यह

दोनों मेरे दो हाथ हैं।' महाराजश्री महीनों तक उनके साथ रहे—काशीमें, जबलपुरमें; परन्तु उनके अत्यधिक स्नेहको देखते हुए बार-बार उनके मनमें आता कि 'कहीं यह पीठाधीश्वरका बोझ मेरे सिर न पड़ जाय।' आजीवन उन्मुक्त वातावरणमें रहनेवाले निःस्पृह पुरुषके लिये पीठाधीश्वरकी मर्यादा और महन्तका उत्तरदायित्व भी बन्धन ही है। महाराजश्रीके बाल्यावस्थासे ही वैराग्यप्रवण मनने उस ऐश्वर्यसे बचनेके लिए दण्ड-त्यागका ही संकल्प किया। उपनिषदोंमें उस मन्त्रका उल्लेख है, जिसका उच्चारण करके दण्डन्यास करना चाहिये। महाराजश्रीने श्रीकृष्णकी लीलाभूमि प्रेममयी व्रजभूमिमें आकर कालिन्दीके जलमें खड़े होकर मन्त्रोच्चारण पूर्वक दण्डत्याग कर दिया। इस प्रकार पीठाधीश्वरीसे बच निकले। इसके बाद अनेक बार ज्योतिष्पीठाधीश्वर शंकराचार्यजीसे मिलना हुआ। उन्होंने अतिशय आग्रह किया कि पुनः दण्ड ले लो और दो बार तो बाँधकर दण्ड हाथमें दे भी दिया और कहा कि तुम्हींको यह गद्दी सम्भालनी है, परन्तु महाराजश्री उनका दिया हुआ दण्ड उन्हींके पास छोड़कर चले गये।

★

श्री उड़ियाबाबाजीका सान्निध्य

महाराजश्री अपने गृहस्थ जीवनमें ही कल्याणमें छपे श्री उड़ियाबाबाजी महाराजके उपदेश पढ़-पढ़कर उनके प्रति श्रद्धालु हो गये थे। जिन दिनों वे श्री स्वामी योगानन्दजीके साथ कर्णवासमें रहकर श्रीकृष्ण-मन्त्रका अनुष्ठान कर रहे थे, उन दिनों श्री उड़ियाबाबाजी महाराज रामघाटमें थे, परन्तु श्री योगानन्दजीने अतिशय वात्सल्यके कारण बाबाजीके पास नहीं जाने दिया। वे इस बातके लिये अति सावधान थे कि शास्त्रीय अनुष्ठानके बीचमें वेदान्तका सत्संग प्राप्त होनेसे कहीं शिथिलता न आ जाय। सचमुच भावप्रधान साधनामें विवेकियोंका सत्संग कभी-कभी चित्तको कठोर बना देता है और द्रव दशाकी उत्पत्तिमें प्रतिबन्धक हो जाता है। महाराजश्रीने स्वामीजीकी आज्ञा शिरोधार्य करके बाबाके दर्शन नहीं किये।

इसके बाद तो फिर झूसीके संवत्सरव्यापी अखण्ड संकीर्तनके उद्यापनमें ही बाबाके प्रथम दर्शन हुए। बाबाके विवेककी स्फुटता, स्नेह, वात्सल्य और जीवन्मुक्तिके विलक्षण सुखकी मस्ती

देखकर महाराजश्री मुग्ध हो गये। बाबाने भी अपने स्नेह-आकर्षण-से महाराजश्रीके चित्तको लुभा लिया। उसके बाद अयोध्यामें, खाँड़ेमें, कर्णवासमें और वृन्दावनमें अनेक बार महाराजश्री बाबाके पास जाते रहे। बाबाको उपनिषद्, कारिका, पंचदशी, गीता, श्रीमद्भागवत आदिका श्रवण कराते, उनका सत्सङ्ग करते और महीनों तक उनके पास रहते। बाँधपर भी कई बार सत्संगका अवसर प्राप्त हुआ। 'कल्याण'के कामसे जब भी अवकाश मिलता, उनके पास जाते। महाराजश्रीके संन्यास ग्रहण करनेमें बाबाकी ही अन्तरङ्ग प्रेरणा थी। वे ब्राह्मणको विधिपूर्वक दण्डग्रहणकी प्रेरणा देते थे। महाराजश्रीसे उन्होंने संकेतमें कहा था कि 'निष्काम भावसे कर्म करनेपर भी उसका अभ्यास हो जानेपर कर्मासक्ति हो जाती है, साथ ही निष्काम कर्म करनेवाले सज्जनोंमें रहनेसे उनके प्रति भी ममता-मोहका उदय हो जाता है।' यह बात उन्होंने एक महात्माका यह दृष्टान्त देकर समझायी थी। महात्मा जहाँ जाते, यही कहते—'कहीं कब्र है, कब्र?' एक ज्ञानी गृहस्थने कहा—'कहीं मुर्दा है, मुर्दा?' महात्माजीने मुर्दा सरीखे काष्ठमौन होकर उस ज्ञानी गृहस्थके घरमें निवास किया। बादमें घरमें चोरोंके आनेपर उनका पीछा किया और उन्हें पकड़वा दिया।' मुर्दा झूठा निकला और कब्र सच्ची हो गयी।' महाराजश्रीने इस उपदेशको अपने लिये

'कल्याण' परिवारसे, जो कि अब अपने घर-कुटुम्बसे भी अधिक ममतास्पद हो चुका था, संन्यास ग्रहण करनेकी प्रेरणा समझी और जैसा कि पहले वर्णन किया जा चुका है, ज्योतिष्पीठाधीश्वरसे संन्यास ग्रहण किया।

दण्ड लेकर भी महाराजश्री महीनों तक उड़िया बाबाजीके सान्निध्यमें रहे और सत्सङ्ग करते-कराते रहे। दण्डग्रहणके अनन्तर सर्वप्रथम श्री हरिबाबाजीके बाँधपर उत्सवके समय महाराजश्री पधारे। वहाँ श्री उड़ियाबाबाजी महाराज, श्री शास्त्रानन्दजी, श्रीहरिबाबाजी, श्री आनन्दमयी मां आदि भारतवर्षके प्रसिद्ध सिद्ध महापुरुष इकट्ठे थे। महाराजश्री दण्डग्रहणके पूर्व इन सभी महात्माओंको प्रणाम करते थे। इधर दण्डग्रहणके समय ज्योतिष्पीठाधीश्वर शंकराचार्यने कह दिया कि 'सब साधुओंको प्रणाम नहीं करना; क्योंकि ब्राह्मणोंके अतिरिक्त और किसीके लिये शास्त्रोक्त संन्यासका अधिकार नहीं है। ब्राह्मणोंमें भी केवल दण्डी स्वामी और दण्डीस्वामियोंमें भी जिनका चातुर्मास्य अधिक हो, और उनमें भी जो त्यागी और विद्वान् हों, उन्हींको नमस्कार करना चाहिये।' इस उपदेशके कारण महाराजश्रीके मनमें बड़ी दुविधा हुई। उन्होंने श्री उड़ियाबाबाजी महाराजसे एकान्तमें मिलकर पूछा कि 'ऐसी

स्थितिमें मुझे क्या करना चाहिये?' उन्होंने कहा–'दीक्षा या उपदेश ग्रहण करना हो, तब तो ब्राह्मण एवं दण्डी स्वामी हो इसका ध्यान रखना चाहिये; परन्तु प्रणाम करना हो, तब तो सबको करना चाहिये। प्रणाम भगवद्बुद्धिसे करना चाहिये, मनुष्यबुद्धिसे नहीं। प्रणाम तो विनयका सूचक है, एक सद्गुण है। तुम जिन महात्माओंको पहले प्रणाम करते रहे हो उनको बिना वर्णका विचार ही किये प्रणाम करो।' बाबाका यह उपदेश महाराजश्रीने धारण कर लिया। अब भी उन्हें किसीको प्रणाम करनेमें हिचक नहीं है। उसी उत्सवमें बाँधपर महात्मा कृष्णानन्दजी अवधूत एम. ए. एवं विपिनचन्द्र मिश्र एडवोकेट, दिल्ली, आदिसे महाराजश्रीका परिचय हुआ था।

श्रीमद्भागवत—प्रवचन

बाँधके उत्सवके अनन्तर श्री उड़ियाबाबाजीने महाराजश्रीको आज्ञा दी कि 'तुम शंकरलाल, निर्मलदास एवं आञ्जनेयको लेकर शंकराचार्यके पास जाओ और इन्हें संन्यास एवं ब्रह्मचर्यकी दीक्षा दिला कर आओ।' महाराजश्रीकी सेवामें उस समय आन्ध्र देशके ब्रह्मचारी श्री पद्मनाभजी थे। ये लोग बाँधसे प्रयाग जानेके लिये गंगा किनारे-किनारे पैदल रवाना हुए; परन्तु मार्गमें किसी भक्तने आग्रह करके रेलगाड़ीमें बैठा दिया और ये लोग प्रयाग पहुँच गये। वहाँ पहुँचने पर मालूम हुआ कि शंकराचार्यजी जबलपुरमें हैं। प्रयागसे जबलपुरका मार्ग जंगली है और पैदल चलकर वहाँ पहुँचते-पहुँचते शंकराचार्य वहाँ रहेंगे या अन्यत्र चले जायँगे, यह ज्ञात नहीं था। यह लोग प्रयागमें गंगा स्नान करते समय इसी समस्यापर विचार कर रहे थे कि एक ब्राह्मणने सुन लिया। उसने घर लाकर सबको भोजन भी कराया और जबलपुर पहुँचनेकी व्यवस्था भी कर दी। जबलपुरमें शंकरलाल प्रबोधानन्द सरस्वती, निर्मलदास प्रकाशानन्द सरस्वती और आञ्जनेय शिवानन्द ब्रह्मचारी बन

गये । महाराजश्री श्रीमद्भागवतका प्रवचन करते । सहस्र-सहस्र जनता श्रवण करती । उस समय और उसके बाद भी जब-जब जबलपुर गये, जितनी अधिक लोगोंकी उपस्थिति महीनों तक वहाँ देखनेमें आयी, नित्य पन्द्रह-बीस हज़ार तक, उतनी अन्यत्र कहीं नहीं। वहाँके श्री गिरिजानन्दन दुबे, द्वारकाप्रसाद शास्त्री, सुन्दरलाल इन्दुरख्या, प्राणाचार्य सुन्दरलाल, ब्योहार राजेन्द्रसिंह, नेकनारायण सिंह, गुलाबचन्द गुप्त, पं. लोकनाथ शास्त्री आदि बड़े प्रेमसे महाराजश्रीका सत्संग करते थे। श्रीमद्भागवत सप्ताहमें पाँच सहस्रसे भी अधिक जनताने नियमबद्ध होकर लगातार चार-चार घण्टे बैठकर श्रवण किया। यह सब मेरी आँखों देखी बातें हैं। मैं इनमें सम्मिलित रहता था और तबसे साथ ही साथ था। इस बातको अब १९–२० वर्ष हो चुके हैं। ब्रह्मचारी पद्मनाभ जी अब सच्चिदानन्देन्द्र सरस्वतीके नामसे आन्ध्र प्रदेशमें विख्यात हैं। रामराज्य परिषदके अध्यक्ष दण्डिस्वामी श्रीस्वरूपानन्दजी सरस्वती महाराजश्रीको वहीं मिले थे और उसके बाद वर्षों तक महाराजश्रीके सान्निध्यमें रहे। भारत प्रसिद्ध कथावाचक मानस मर्मज्ञ पं.श्री रामकिंकर उपाध्यायने पहले-पहल वहीं मन्त्रदीक्षा ग्रहण की थी और वर्षोंतक महाराजश्रीके सान्निध्यमें रहे थे। जबलपुरकी जनता अब भी महाराजश्रीके प्रति अत्यन्त श्रद्धालु है। जब वे यदा-कदा उस मार्गसे निकलते हैं, तब

स्टेशनपर सहस्रोंकी भीड़, मनों पुष्पमालाओं एवं जय-जयकारकी गुञ्जारसे प्लैटफार्म भर जाता है।

महाराजश्रीने पहला चातुर्मास्य गंगातटवर्ती कर्णवास क्षेत्रमें किया था। वहाँ बाबाके सान्निध्यमें माण्डूक्य-कारिकाका प्रवचन करते थे। देशके प्रसिद्ध-प्रसिद्ध वेदान्तियोंका वहाँ जमघट होता, वेदान्त सम्बन्धी गंभीर प्रश्नोत्तर होते। नरवरके ब्रह्मचारी पं. जीवनदत्तजी, जयपुरके महामहोपाध्याय पं. गिरिधरशर्मा चतुर्वेदी, ब्यावरके पं. रामप्रताप शास्त्री, कविरत्न पं. अखिलानन्दजी आदि भी वहाँ आते थे और महाराजश्रीके प्रवचनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते थे। ब्रह्मचारीजीने तो नरवर भी बुलाया। पंडित रामप्रतापजी सदाके लिये भक्त हो गये और वृन्दावनमें भी आते-जाते रहे। उन्हीं दिनों संस्कृत ग्रन्थोंके प्रसिद्ध हिन्दी अनुवादक श्री मुनिलालजी, जो अब स्वामी सनातनदेवजीके नामसे प्रसिद्ध हैं, कर्णवासमें आये हुए थे। वे श्रीमद्भागवतका भी अनुवाद कर चुके थे और महाराजश्रीके श्रीमद्भागवत-सम्बन्धी पाण्डित्यसे परिचित थे। उन्हें ज्ञात था कि महाराजश्री कभी-कभी श्रीमद्भागवत सप्ताह भी करते हैं और रतनगढ़में गोस्वामी श्री चिम्मनलालजी तथा गोरखपुरमें श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार इनसे सप्ताह-श्रवण कर चुके हैं। उन्होंने श्रीमद्भागवत-श्रवणका संकल्प किया और बड़ी धूम-धामसे पक्के घाटपर आयोजन हुआ। श्रीउड़ियाबाबाजी,

श्रीनिर्मलानन्दजीने भी नियमपूर्वक श्रवण किया। उस सप्ताहमें बड़े-बड़े चमत्कार हुए। कई लोगोंने बादमें बताया कि हमें भागवतके सिंहासनपर बालकृष्णकी झाँकी स्पष्ट दिखायी पड़ी। बारहवें स्कन्धका सप्ताह-प्रवचन करते समय शुकदेवजीकी विदाईके प्रसङ्गमें महाराजश्री बेसुध हो गये। कुछ भक्तोंको बड़ा दुःख हुआ, कुछको ऐसा अनुभव हुआ कि महाराजश्रीकी गोदमें यशोदास्तनन्धय आनन्दकन्द श्रीबालमुकुन्द क्रीड़ा कर रहे हैं। महाराजश्री बतलाते हैं कि 'मुझे उस समय स्पष्ट अनुभव हुआ कि वस्तुतः सप्ताह-प्रवचन श्रीशुकदेवजी महाराज ही कर रहे थे, मैं नहीं। उनके चले जानेसे शरीरकी शक्ति क्षीण, वाणीकी गति एवं स्वर मन्द पड़ गये थे।' तबसे प्रत्येक व्यवस्थित एवं विधिपूर्वक होने वाले प्रवचनमें यही अनुभव होता है कि कोई दूसरा ही दैव जगत्‌का प्रवक्ता आकर प्रवचन कर जाता है। यह बात महाराजश्री समय-समय पर प्रकट करते रहते हैं कि 'अभी वक्ता नहीं आया' अथवा 'वक्ता चला गया'। सच है, अखण्ड ब्रह्मस्वरूपमें वक्तृत्व आगन्तुक ही है।

यह बात पहले ही कही जा चुकी है कि श्रीमद्भागवतके साथ महाराजश्रीके जीवनका अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध रहा है। अपने गृहस्थ जीवनमें तथा 'कल्याण' सम्बन्धी जीवनमें उन्होंने अनेक श्रीमद्भागवत सप्ताह किये और प्रायः प्रतिदिन श्रीमद्भागवत सम्बन्धी प्रवचन भी करतें रहे। जहाँ-कहीं भी जाते-आते, यही क्रम चालू

रहता । इन्हीं दिनोंमें श्रीमद्भागवतका प्रसिद्ध भावानुवाद, जो गीताप्रेस गोरखपुरसे प्रकाशित है, श्रीमद्भागवतांकके लिये किया और बादमें वही मूल ग्रन्थके साथ जोड़कर पुस्तकाकार प्रकाशित किया गया। वृन्दावनमें श्री उड़ियाबाबाजीके आश्रममें प्रतिदिन श्रीमद्भागवतकी कथा होती थी। एक बार तो श्रीहरिबाबाजी महाराजने एक वर्षका अनुष्ठान करके श्रीधरी सहित सम्पूर्ण श्रीमद्‌भागवत श्रवण किया था। श्रीश्री आनन्दमयी मांने एक बार सप्ताहके रूपमें और एक बार पाक्षिक प्रवचनके रूपमें श्रवण किया। इसमें काशीके प्रायः सभी बड़े-बड़े विद्वान् सम्मिलित हुए, जिनमें महामहोपाध्याय पंडित श्री गोपीनाथ कविराज, पंडित मथुरा प्रसाद दीक्षित, पंडित जीवनशंकरजी याज्ञिक, डाक्टर पन्नालाल आदि भी थे। श्री आनन्दमयी मां समय-समयपर महाराजश्रीको आमन्त्रित करती रहती हैं और जब-जब वृन्दावनमें आती हैं, नियमसे कथा-श्रवण करती हैं।

★

एक अलौकिक घटना

श्रीमद्भागवत-सप्ताहके सम्बन्धमें एक बार बहुत अलौकिक घटना घटित हुई। विहार प्रदेशके एक छोटे-से कस्बेमें, जिसका नाम पचम्बा है, एक मारवाड़ी बालककी सत्रह वर्षकी आयुमें मृत्यु हो गयी थी। मृत्युका कारण कुछ भयभीत हो जाना था। उसके मां-बाप दुःखी होकर बदरीनाथ गये और वहाँ ब्रह्मकपाली पर पिण्डदान किया। उसके बाद वह बालक अपनी मांके शरीरमें प्रवेश करने और अपनी दुर्गतिका हाल बताने लगा। उसका कहना था कि 'मरनेके बाद मैं मूर्च्छित दशामें था। ब्रह्मकपालीपर पिण्डदान करनेसे मुझमें चेतना और शक्तिका संचार हुआ है, जिससे मैं बात कर सकता हूँ। अब मैं भागवत सप्ताह श्रवण करूँगा, तो मेरी मुक्ति होगी।' इस कार्यके लिये उसने अपने पिताको महाराजश्रीके पास भेजा। उस समयतक महाराजश्री गृहस्थोंको सप्ताह नहीं सुनाते थे। मुख्य श्रोता कोई महात्मा ही होता था; परन्तु उस बालककी आत्माने कुछ ऐसे चामत्कारिक संयोग बना दिये कि महाराजश्रीको वहाँ जाना पड़ा। उस बालकने कर्मकाण्डकी कई विधियाँ

बतायीं। अपने लिये विशेष आसन बनवाया,। कथा-विश्रामके सम्बन्धमें महाराजश्रीको कुछ निर्देश दिये और अन्तमें 'अब मैं मुक्त हो गया, लौटकर इस लोकमें फिर कभी नहीं आऊँगा,' ऐसा महाराजश्रीसे कहकर चला गया। गयाके आस-पास जन्म लेनेवाले एवं ब्रह्मकपालीमें पिण्डदान प्राप्त करनेवाले इस बालककी मुक्ति श्रीमद्भागवत सप्ताहसे हुई, यह सप्ताह-प्रवचनकी एक प्रत्यक्ष महिमा है। इस प्रसङ्गमें श्रीमद्भागवतका पाठ मैंने किया था और प्रवचन महाराजश्रीने।

★

सप्ताहके अनेक आयोजन

श्री उड़ियाबाबाजी महाराजने दो सप्ताह एवं बम्बई वाले स्वामी श्री कृष्णानन्दजी महाराजने भी दो सप्ताह श्रवण किये। ये दोनों ही सप्ताहके समय निश्चल भावसे विराजमान रहते थे। श्री हरिबाबाजी महाराज बहुत मना करने पर भी सप्ताहके समय बैठते नहीं हैं, खड़े होकर चँवर डुलाया करते हैं। बम्बईवाले स्वामीजीने जब सप्ताह-श्रवण किया था तब श्रीरामजी ब्रह्मचारी महाराजश्रीकी सेवामें रहते थे, जो अब महाराजश्रीके गुरुदेव ज्योतिष्पीठाधीश्वर स्वामी श्री ब्रह्मानन्दजी सरस्वती महाराजके उत्तराधिकारीके रूपमें वर्तमान शंकराचार्य हैं। इसके अतिरिक्त महाराजश्रीने कानपुरकी गंगाकुटीमें सेठ श्री पद्मपति सिंघानियाकी मांको, वृन्दावनमें रायबहादुर बाबू ज्योतिप्रसादको, सेठ आत्मासिंहको, जबलपुरमें स्व. पं. नर्मदाप्रसाद मिश्रको, बम्बईमें भगवानदास सिंघानियाँ, गोरखपुरमें श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार, बड़े-बड़े प्रतिष्ठित विद्वान्, सन्त, एवं सेठोंको भी श्रीमद्भागवतका

श्रवण कराया, जिनमें दस-दस हजार तक श्रोताओंने नियमसे श्रवण किया। विशेषता यह रही कि किसी भी श्रीमद्भागवत सप्ताहमें महाराजश्री किसी प्रकारकी दक्षिणा स्वीकार नहीं करते। सात दिन तक लोग छः-छः घण्टे भावमुग्ध होकर श्रवण करते रहते हैं, मानो दूसरे लोकमें चले गये हों। सब मौन, सब स्तब्ध निर्निमेष नेत्रोंसे महाराजश्रीकी ओर निहारते रहते हैं। सारा वातावरण ही शान्ति और आनन्दसे भर जाता है।

★

श्री भक्त कोकिलजीका प्रेम

संन्यास ग्रहण करनेसे दो-तीन वर्ष पूर्व महाराजश्री वृन्दावन पधारे। रमणरेतीके अन्तर्गत श्रीजीके वगीचेमें गीताप्रेसके संस्थापक श्री जयदयालजी गोयनकाका सत्संग चलता था। उन दिनों महाराजश्री 'कल्याण' परिवार के ही एक सदस्य थे। वृन्दावनके भक्तगण एवं सीतामऊके राजा रामसिंहजी उपस्थित थे। सेठजीके कहनेसे महाराजश्रीने वृन्दावनकी अन्तरङ्ग वस्तु नाम-महिमा, धाम-महिमा, वेणु-माधुरी एवं युगलप्रेमरस पर प्रवचन किया। विशेष करके वृन्दावनके श्रोताओंको वहुत अनुकूल पड़ा और वहुत आनन्द हुआ। उन्हीं श्रोताओंमें अपने परिवारके साथ श्रीभक्त कोकिलजी भी बैठे हुए थे। वे भावमग्न हो गये। प्रवचनके अनन्तर उन्होंने अपने सत्संगियोंसे कहा कि 'यह तो मेरे जन्म-जन्मके परिचित मालूम पड़ते हैं। इनसे कहो कि ये मेरे स्थानपर चलें।' उन लोगोंने प्रार्थना भी की; परन्तु महाराजश्री उस समय उनके यहाँ नहीं जा सके; क्योंकि 'कल्याण' सम्पादनके कामसे तुरन्त रतनगढ़ जाना अनिवार्य था। भक्त कोकिलजी अपने सत्संगियोंमें उनकी चर्चा करते रहे। यह भक्त कोकिलजी सिन्ध प्रदेशके जेकमाबाद जिलेमें खास मीरपुर

गाँवके रहनेवाले थे और उस प्रदेशमें प्रसिद्ध भक्त श्री शीतलदास अथवा श्रीखण्डदासके नामसे बहुपरिचित एवं बहुचर्चित थे। इन दिनों भगवान्‌की प्रेरणा एवं श्रीगुरु नानकके आदेशानुसार इन्होंने श्रीवृन्दावन धाममें निवास कर लिया था। अब भी हजारोंकी संख्यामें उनके भक्त सारे भारतमें फैले हुए हैं।

जब महाराजश्री संन्यास ग्रहण करके वृन्दावनमें श्रीउड़िया-बाबाजी महाराजके सान्निध्यमें आये, तब भक्त कोकिलजीने देखते ही उन्हें पहचान लिया और उनके प्रवचनमें तथा कुटियामें अधिकतर आना प्रारम्भ कर दिया। वे महाराजश्रीके दोनों चरण अपनी गोदमें लेकर बैठ जाते, धीरे-धीरे उनपर हाथ फिराते और कहते—'इनमें मुझे अपने गुरुदेव श्रीआत्मारामजीके दर्शन होते हैं।' फिर तो महाराजश्रीका उनके सत्संगमें आना-जाना बढ़ गया, सम्बन्ध घनिष्ठ हो गया। महाराजश्री कहते हैं कि 'उनके सत्संगमें बैठनेपर मेरे हृदयमें लोकोत्तर चमत्कारकारी भक्तिभावोंकी स्फुरणा होती थी।' ६-७ वर्षतक उनका घनिष्ठ सम्बन्ध, आना-जाना भजन-प्रवचन, आमोद-प्रमोद प्राप्त होता रहा। अब भी उनके सत्संगी महाराजश्रीके प्रति वैसा ही भाव रखते हैं एवं भारत-वर्षके कोने-कोनेमें जहाँ-जहाँ महाराजश्री जाते हैं, वहाँ वे मिलते हैं। महाराजश्रीने 'श्रीभक्त कोकिल' के नामसे उनकी जीवन-कथा लिखी है, जो भक्ति-प्रेम-सम्बन्धी प्रसङ्गोंसे परिपूर्ण है। साईं-मैयाके सत्संगमें अधिकांश उसकी कथा होती है।

*

पैदल यात्राएँ

महाराजश्री अपनी बाल्यावस्थासे ही पैदल यात्रा करनेमें बड़े अभ्यस्त थे। दिन भरमें २०—२५ मीलकी यात्रा कर लेना तो उनके लिये अनायाससाध्य है। कभी-कभी तो अपने घरसे २०—२५ मील काशी जाकर लौट भी आये। सप्ताहमें एक बार अपने गाँवसे चौदह मील दूर मोकलपुरके बाबाके पास जाकर सत्संग करते और लौट भी आते। जगन्नाथपुरीसे ब्रह्मपुरम् तक, गयासे बख्तियारपुर तक तथा दूसरे स्थानोंकी लम्बी-लम्बी यात्राएँ बिना किसी साधन-सम्बलके की थीं। संन्यास ग्रहणके अनन्तर श्री उड़ियाबाबाजी महाराजके पास आनेपर एक तो अनूपशहरसे वृन्दावन तक तथा दूसरी वृन्दावनसे ग्वालियर तक की पैदलयात्रा उनके साथ की थी। कर्णवाससे ऋषिकेश, ऋषिकेशसे वृन्दावनकी यात्रा भी पैदल ही की थी, जिसमें स्वामी स्वरूपानन्दजी सरस्वती, स्वामी सनातनदेवजी और अवधूत गणेशानन्दजी भी साथ थे। गंगोत्तरी, और बदरीनाथकी यात्रा पैदल तो की ही थी, बहुत-से

महात्माओंके साथ वृन्दावनसे प्रयागराजकी कुम्भयात्रा भी की थी। इसमें गाँव-गाँव, ठाँव-ठाँव इतने समारोह हुए, स्वागत-सत्कार, सभाव्याख्यानकी धूम मच गयी कि वह अवर्णनीय है। इटावा जिलान्तर्गत औरैयामें स्वामी श्री प्रेमानन्दजी महाराजने स्वागत एवं सत्संगका एक विशाल आयोजन किया। इस यात्रामें मैं आरम्भसे अन्ततक महाराजश्रीके साथ-साथ रहा। कहीं भण्डारे हुए तो कहीं भिक्षाटन। बीस-बीस मील मार्ग तय कर लेते और जङ्गलमें सो जाते थे।

★

तीर्थसेवनमें रुचि

महाराजश्रीकी जन्मभूमिसे गंगाजी एक कोस हैं और काशी दस-बारह कोस। पितामहकी व्रजयात्रासे जन्मका सम्बन्ध है। इस प्रकार विचार करनेपर जान पड़ता है कि तीर्थस्थानोंके साथ महाराजश्रीका कोई पूर्व सम्बन्ध अवश्य है। माताजीने पिताकी मृत्युके अनन्तर चारों धामकी यात्रा की। उस समय आप पितामहके साथ घरमें ही रहे। जब आप मांसे मिलनेके लिये मचलते तो पितामह सुनाते कि आज तुम्हारी मां किस तीर्थमें हैं और उस तीर्थकी पौराणिक कथा क्या है। उस समय महाराजश्री मांके साथ तीर्थोंमें जा नहीं सके थे; परन्तु उनके सम्बन्धमें भीतर-ही-भीतर एक लालसाका बीज पड़ गया था। अध्ययनके समय जब वे काशीमें रहते तो गंगास्नान और अन्नपूर्णा, विश्वनाथका दर्शन अवश्य करते। उन्हीं दिनों योगभाष्य पढ़ाते समय इनकी नानीके गुरुदेव दिगम्बर न्यस्तदण्ड स्वामी श्री मनीषानन्द सरस्वतीश्री ने यह संस्कार डाला था कि 'ईश्वर प्रणिधान अर्थात् ईश्वरके प्रति अपने सम्पूर्ण कर्मोंका समर्पण किये बिना कोई भी मनुष्य शान्ति नहीं प्राप्त कर सकता।' आककी चौकी पर बैठकर

सम्पूर्ण शास्त्रोंका रहस्य उद्घाटन करनेवाले सिद्ध पण्डित रामपरीक्षण शास्त्रीने कहा था कि 'उपासनाके बिना शास्त्रोंका असली रहस्य समझमें नहीं आता।' महावैयाकरण पण्डित श्री रामभवन उपाध्याय प्रतिदिन अन्नपूर्णाका दर्शन करने जाते थे। आठ आनेकी प्रतिदिन पुष्पमाला चढ़ाते। उनका कहना था कि 'मां अन्नपूर्णाकी कृपासे ही मुझे सम्पूर्ण विद्या एवं उन्नति प्राप्त हुई है।' काशीमें ही एक बड़े तितिक्षु एवं अनुभवी सन्त श्री हरिहरबाबाजी महाराज नावपर रहते थे। महाराजश्री उनका दर्शन करने गये। कई सज्जन हरिहरबाबाके चारों ओर बैठकर शुद्ध-अशुद्ध, जैसा-कैसा पाठ कर रहे थे। एक पण्डितने पूछा कि 'बाबा, इन अशुद्ध पाठ करनेवालोंको आप मना क्यों नहीं करते? बाबाने हँसकर कहा—'किसीका दोष बताना साधुका काम नहीं है।' एक बार बाँधवाले श्रीहरिबाबाजी महाराजने भी ऐसा ही कहा था। वे बोले—'सब कुछ ईश्वरके सामने ही हो रहा है। उसको नापसन्द हो तो रोक दे। सन्त ईश्वरको देखेगा, दूसरेको देखकर अपना मन क्यों बिगाड़े?' महाराजश्रीके चित्तपर इन सूक्तियोंका बड़ा प्रभाव पड़ा। आगे चलकर इन्होंने उनके जीवनमें बड़ी गहराईसे स्थान प्राप्त किया।

महाराजश्री कभी-कभी श्री अवधमें भी जाया करते थे, अब भी जाते हैं। एक बार वहाँ इन्होंने जानकीघाटवाले पण्डितजी

श्रीरामवल्लभाशरणजी महाराजसे प्रश्न किया—'बिना ज्ञानके मुक्ति नहीं होती, ऐसा श्रुतिने कहा है, फिर सरयू स्नानसे मुक्ति होती है, इसका क्या अर्थ है?' वे बोले—'मुक्तिकी संवित् होना आवश्यक है। काशीमें मरनेसे हो, प्रयागमें गिरनेसे हो या नामोच्चारणसे हो, संवित् मुक्तिका हेतु है। उपासनाजन्य संवित् सालोक्यादिका हेतु है, महावाक्यजन्य कैवल्यका।' महाराजश्रीको यह समन्वय बहुत प्रिय लगा। वे अब भी कहते हैं कि 'सगुण ब्रह्मकी प्राप्तिके लिये भक्ति स्वतन्त्र साधन है। निर्गुण ब्रह्मबोधमें केवल महावाक्य ही प्रमाण है। सन्तोंका साधारण वार्तालाप भी जीवोंके लिये कल्याणकारी होता है।' पण्डितजी पहले पढ़े-लिखे नहीं थे। हनुमान्‌जीकी कृपासे ही वे सर्वशास्त्रपारङ्गत हो गये थे। महाराजश्रीने उनसे कहा—'अब मैं विरक्त होकर भजन करना चाहता हूँ।' पण्डितजीने कहा—'तुम्हारा मकान कच्चा, घरमें तीन-चार प्राणी और भोजनके लिये साधारण दाल-रोटी मिलती है। हमारा आश्रम पक्का, इसमें रहनेवाले सैकड़ों साधु और खानेके लिये लड्डू-पूड़ी। इसमें कौन-सी वैराग्यकी बात है?'

महाराजश्री बार-बार हरिद्वार ऋषिकेशकी भी यात्रा करते और वहाँ महीनों तक निवास करते। वैराग्य-भूमि गंगातटका आनन्द लेते। स्वामी श्री मंगलनाथजी महाराजका अत्यन्त वृद्ध और रुग्ण अवस्थामें उन्होंने दर्शन किया था। वे उत्तराखण्डके

एक ब्रह्मनिष्ठ श्रेष्ठ महापुरुष थे। उनका कहना था कि 'एक अन्तःकरणमें एक साथ अनुभूति और स्मृति—दोनों नहीं रह सकतीं। जिसका अनुभव हो रहा है, वह अपरोक्ष है, उसका स्मरण क्या? जिसका स्मरण हो रहा है, वह परोक्ष है, उसका अनुभव क्या? इसलिये प्रत्यक्चैतन्याभिन्न ब्रह्मतत्त्वका जब साक्षात् अपरोक्ष हो जाता है, अविद्या निवृत्त हो जाती है, तब वह सदा विभात साक्षात् अनुभवस्वरूप ही है। इसलिये उसके स्मरणकी कोई अपेक्षा नहीं है। सच पूछो तो, जिसको स्मृति, ब्रह्माकारवृत्ति, निदिध्यासन, अभ्यास अथवा समाधिकी आवश्यकता बनी हुई है, उसको ब्रह्मसाक्षात्कार हुआ ही नहीं है।' महाराजश्री वेदान्त–सत्संगके प्रसङ्गमें आनन्दमें भरकर उनकी यह बात बार-बार दुहराया करते हैं।

महाराजश्री पहले गोयनकाजीके सत्संगमें जाकर चुपचाप बैठे रहा करते थे। किसीसे कोई परिचय नहीं था। पहले-पहल एकान्तमें मिलनेपर गोयनकाजीने पञ्चदशीकी कई ऐसी बातें बतायी थीं जैसे, प्रारब्धसे पाप होना आदि, जिन्हें वे नहीं मानते और कहते हैं कि समाजपर उसका बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। महाराजश्रीने बड़े ध्यानसे उनकी बात सुनी और प्राचीन महात्माओंके ग्रन्थोंपर विचार करनेके लिये एक सजग दृष्टि प्राप्त हुई। बादमें 'कल्याण' परिवारके साथ सम्बन्ध जुड़ जानेपर

तो महाराजश्री प्रायः प्रतिवर्ष गरमीके दिनोंमें स्वर्गाश्रम जाते और वहाँके सत्संगमें कथा-प्रवचन करते। महाराजश्रीका श्रीमद्भागवतपर असाधारण अधिकार देखकर लोग आश्चर्यचकित हो जाते और बार-बार अनुरोधपूर्वक राधा-माधव-माधुरीका पान करते।

संन्यासी होनेके अनन्तर जब-जब उधर गये, गीताभवनमें, परमार्थनिकेतनमें, काली कमली क्षेत्र एवं पञ्जाब-सिन्ध क्षेत्रके सत्संग भवनमें प्रवचन करते। प्रातःकाल और सायंकाल स्वाभाविक ही गंगातटपर वसुधाराके पास जाकर बैठ जाते। ऋषिकेश, कैलासाश्रम एवं झाड़ियोंमें रहनेवाले विरक्त सन्तोंकी भीड़ जमा हो जाती। सैकड़ों सत्संग प्रेमी गृहस्थ स्त्री-पुरुष भी आ जाते। उन्मुक्त प्रश्नोत्तर होते, वेदान्तका निरूपण होता। वहाँ गम्भीर युक्ति एवं प्रयुक्तियोंके द्वारा यह सिद्ध सिद्धान्त प्रकट होता कि 'अपना आत्मा ही ब्रह्म है। ब्रह्म एकरस, अद्वितीय चिन्मात्र है। चिन्मात्र नित्यप्राप्त होनेपर भी अविद्यासे अप्राप्त है। अविद्याकी निवृत्तिके लिये ज्ञानके सिवाय और कोई साधन नहीं हो सकता। ज्ञानको कर्म, उपासना, योग आदि किसीकी अपेक्षा नहीं है। प्रपञ्च नित्य-निवृत्त ही है। अविद्याकी निवृत्ति होने पर कुछ भी कर्तव्य

शेष नहीं रहता । जब तक कर्तव्य शेष है तब तक परिच्छिन्न कर्तापनकी भ्रान्ति शेष है, ऐसा समझना चाहिये ।' इन प्राचीन सिद्धान्तोंका निरूपण करनेके लिये महाराजश्रीकी बुद्धिमें नवीन-नवीन युक्तियोंका उन्मेष होता है। नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा उनका जन्मजात सहज गुण है। बादमें महाराजश्री ऋषिकेश जाते तो विरक्त सन्तोंमें सत्संग तो होता ही, आपका निवास महामण्डलेश्वर स्वामी श्री शुकदेवानन्दजी महाराजके द्वारा स्थापित परमार्थ निकेतनमें होता और कथा-प्रवचन भी। स्वामीजी महाराजने अपने आश्रमको गंगातटका स्वर्ग बना दिया है।

उत्तराखण्डका आनन्द

महाराजश्री संन्यास ग्रहणके अनन्तर ही उत्तरकाशी गये। मसूरीसे लालोड़ीका मार्ग उन दिनों बहुत कठिन था। चीड़के पत्ते, नाले, गुफायें और बहुत कठिन उतराइयोंमें होते हुए तीन दिनमें वहाँ पहुँचे। अभी-अभी वहाँ पहुँचे ही थे कि उत्तराखण्डके अत्यन्त विरक्त एवं ब्रह्मनिष्ठ महात्मा श्री ब्रह्मप्रकाशजी महाराजको पता चल गया और वे मिलनेके लिये महाराजश्रीके निवास स्थानपर आये। पहला दर्शन था, महाराजश्री उन्हें पहचानते नहीं थे। वे निरभिमानता एवं सरलताकी मूर्ति हैं। आये और प्रणाम करके नीचे बैठ गये। अच्छा सत्संग हुआ। इसी बीचमें किसीने आकर कहा कि यह तो श्री ब्रह्मप्रकाशजी हैं। महाराजश्रीने बहुत आग्रह करके उन्हें अपने आसनपर बैठाया और उनके पूछनेपर सुनाया कि 'प्रत्यक्चैतन्यसे अभिन्न हुए विना ब्रह्मकी पूर्णता, चेतनता, आनन्दरूपता एवं अद्वितीयता सिद्ध नहीं हो सकती। अपनेसे अन्य दृश्य होगा या तो कल्पित। जो मुझसे भिन्न है या मैं जिससे भिन्न हूँ, वह पूर्ण अथवा अद्वितीय कैसे हो सकता है? अन्य परम प्रेमास्पद भी नहीं हो सकता। इसलिये अभेद ज्ञान ही यथार्थ ज्ञान है।'

दूसरे दिन महाराजश्री स्वामी श्री ब्रह्मप्रकाशजीकी कुटियापर गये। स्वामीजीने आतिथ्यसत्कारके रूपमें ब्रह्मसूत्रका सेतून्मानाधिकरण सुनाया। पहले उन्होंने पूर्वपक्षकी स्थापना की। 'श्रुतिमें कहा गया है कि जीव नियम्य है और ब्रह्म नियामक; क्योंकि वह सेतु है। जीव शतधा कल्पित बालाग्रशतभागके समान छोटा है और ब्रह्म आकाशके समान सर्वगत है—यह उन्मान (परिमाण) है। यह जीव सुषुप्तिमें ब्रह्मसे मिल जाता है—यह सम्बन्ध है। जीव और ईश्वर दो पक्षी हैं, यह भेद है। इन श्रुतियोंके अनुसार जीव और ईश्वरका भेद ही न्यायसंगत है।' इसके पश्चात् स्वयं उन्होंने सिद्धान्तका निरूपण किया। 'सेतु' शब्दका अर्थ होता है खेतोंकी मेंड़। इसी प्रकार ब्रह्म भी वर्णाश्रम मर्यादाका व्यवस्थापक है। ब्रह्मज्ञानके पूर्व जीव और ब्रह्मका कल्पित भेद माना हुआ है, इसलिये नियम्य-नियामक भाव भी व्यावहारिक है। जीवको अणु और ईश्वरको विभु 'तत्पदार्थ' एवं 'त्वंपदार्थ'के शोधनके लिये कहा गया है। जैसे, ब्रह्मज्ञानके लिये मायाको तीन पाद और ब्रह्मको तुरीय पाद अथवा विश्वभूतको एक पाद, दिव्य अमृतको तीन पाद कहा गया है, ठीक वैसा ही यह परिमाण भी है; क्योंकि विना पदार्थ-शोधनके एकताका ज्ञान होना सम्भव नहीं है। सम्बन्ध और भेदका व्यपदेश भी छिद्र-भेदसे प्रकाशभेदके समान औपाधिक ही है। इस प्रकार श्रुति, सूत्र,

स्मृति, युक्ति, न्यायपूर्वक विचार करनेसे आत्मा और ब्रह्मका अभेद ही सर्वोत्तम सिद्ध सिद्धान्त है।"

महाराजश्री जब तक उत्तर काशीमें रहे, आपसे बार-बार मिलना और सत्संग होता रहा। तबसे अबतक उत्तरकाशी, स्वर्गाश्रम, ऋषिकेश आदिमें अनेकों बार मिलना हुआ है और स्वामीजी महाराजश्रीसे अत्यधिक प्रेम करते हैं।

उत्तरकाशीमें ही एक वयोवृद्ध सन्त रहते थे। उनका नाम था देवीगिरिजी। महाराजश्री उनका दर्शन करनेके लिये जाया करते थे। उन्हें उत्तरकाशीसे नीचे आना पसन्द नहीं था। एक बार श्री आनन्दमयी मांके उत्सवमें सम्मिलित होनेके लिये बहुत आग्रह करके उन्हें काशी लाया गया तो उन्होंने मसूरीके मार्गसे आनेको मना कर दिया। कहते थे—'यह तो भोग-भूमि है।' उत्तरकाशीमें वे महाराजश्रीको अष्टावक्र गीताके श्लोक सुनाया करते थे—'न त्यागो न ग्रहो लयः।' 'आत्मा स्वतः परिपूर्ण ब्रह्म है उसमें न किसीका त्याग करना है, न ग्रहण करना है, न लीन होना है। सोते रहें तो हमारी कोई हानि नहीं, यत्न करें तो कोई सिद्धि नहीं है। हम तो बाबा, नाश-उल्लास, ह्रास-विकासके झगड़ेसे मुक्त होकर अपने स्वरूपमें स्थित हैं।' बड़े निष्ठावान् महात्मा थे। महाराजश्रीपर उनकी मस्ती और रहनीका विशेष प्रभाव पड़ा।

उत्तरकाशीमें ही श्री तपोवन स्वामीजीका सत्संग भी प्राप्त हुआ। उनकी सरलता, सौजन्य एवं मिलनसारीका अब भी स्मरण होता है। उन्होंने महाराजश्रीके साथ-साथ गंगोत्तरीकी यात्रा भी की थी। वे महाराजश्रीसे कहा करते थे कि 'अखण्डानन्दजी! आप उत्तराखण्डमें आ जाइये। यहाँके वृद्ध सन्त अब शरीर छोड़ते जा रहे हैं। उनका स्थान पूरा नहीं हो रहा है। अब आप आकर यहाँ निवास कीजिये तो यहाँके मुमुक्षुओं, जिज्ञासुओंको बड़ा लाभ होगा। नियम ले लीजिये कि ऋषिकेशसे नीचे नहीं उतरेंगे।' वे बड़े ही सरस हृदयके महात्मा थे। उनकी बोलचाल, रहनीमें से एक प्रकारके माधुर्यकी वर्षा होती थी। यह सभी महात्मा प्रायः प्रति सोमवारको उत्तरकाशीमें विश्वनाथजीके मन्दिर पर एकत्र होते और वेदान्त-सम्बन्धी सत्संग होता। महाराजश्रीके मुखसे वेदान्तका परम तात्पर्य सुनकर यह सभी महात्मा बहुत ही आनन्दित होते थे।

उत्तराखण्डकी यात्रामें गंगोत्तरीमें श्रीकृष्णाश्रमजी महाराज एवं जोशीमठमें अपने संन्यासगुरु ज्योतिष्पीठाधीश्वर शंकराचार्य स्वामी श्री ब्रह्मानन्दजीके भी दर्शन हुए थे। एक बार तो बदरीनाथसे ऋषिकेश तककी यात्रा द्वारकापीठाधीश्वर शंकराचार्य स्वामी श्री अभिनव सच्चिदानन्द तीर्थजी महाराजके साथ हुई। श्रीशंकराचार्यजीने मार्गमें विश्राम, भोजन एवं औषधका बहुत ध्यान रखा। उनका सौजन्य एवं सरलता सराहनाके योग्य हैं। वस्तुतः वे एक निरभिमान व्यक्ति हैं।

*

दक्षिणापथकी यात्रा

महाराजश्रीने दक्षिणी भारतकी यात्रा भी अनेक बार की है। संन्यास ग्रहणसे पूर्व ही गीताप्रेसकी स्पेशल ट्रेनमें प्रयागसे द्वारका होकर दक्षिण और फिर कलकत्ते लौटे थे। साथमें श्री मुनिलालजी (अब श्रद्धेय स्वामी सनातनदेवजी) श्री रमाकान्तजी त्रिपाठी एवं श्रीरामनारायण शास्त्रीके होनेसे बहुत आनन्द आया। कलकत्तेके सेठ श्री जयदयालजी कसेराने समूची यात्रामें महाराजश्रीकी सुख-सुविधाका ध्यान रखा। वे बड़े उदार और आनन्दी पुरुष थे। धनकी अत्यन्त कमी होनेपर भी वे खुले हाथसे खर्च करते थे। अपने शरीरको घोड़ा या खोल कहा करते थे। उन्होंने यह शिक्षा विशेष रूपसे धारण की थी कि 'दृश्य पदार्थमें 'मैं' 'मेरा' होना ही अज्ञान है, तत्त्वज्ञानके द्वारा यही छूटता है।' उनके सङ्गसे यात्रापर आनन्दका रंग चढ़ गया था। साथ-साथ श्री गोयनकाजीका सत्संग। महाराजश्री स्थान-स्थानपर वृन्दावनी अनुरागके रंगसे जनताको सराबोर कर देते। उस यात्राके माध्यमसे महाराजश्रीने सारे भारतवर्षकी आध्यात्मिक, आधिदैविक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक एकताका अनुभव किया।

इसी यात्रामें महाराजश्रीने पाण्डिचेरीका श्री अरविन्द आश्रम भी देखा और तिरुवरणामलैमें श्री रमण महर्षिका सत्संग भी प्राप्त किया। अरविन्द आश्रम आधुनिक शैलीका है। जब महाराजश्री गये थे, श्री अरविन्दके दर्शनका समय नहीं था। माताजीके दर्शन हुए। रात्रिमें सब साधकोंके साथ ध्यानमें बैठे। हल्की-हल्की रोशनीमें देवीकी-सी वेषभूषा धारण किये माताजी सीढ़ियोंपर खड़ी थीं। नलिनीकान्त गुप्त, अनिलवरण राय, दिलीपकुमार राय, अम्बालाल पुराणी आदिसे मिले। जगत्के दिव्य हो जानेपर इसकी क्या रूपरेखा होगी, इसमें रजोगुणी एवं तमोगुणी विकार क्या रूप ग्रहण करेंगे-इन सब विषयोंपर चर्चा हुई। कहना न होगा कि महाराजश्रीके चित्तपर वेद-शास्त्रानुकूल सनातन धर्मके इतने दृढ़ संस्कार हैं कि जो तनिक भी उसपर कटाक्ष करता है, उन्हें नहीं सुहाता। थोड़ी ही चर्चा होनेपर श्री अनिलवरण रायने कह दिया कि 'संसारकी वस्तुओं, क्रियाओंमें परिवर्तन नहीं होगा, केवल मनुष्योंमें भाव एवं दृष्टिमें ही परिवर्तन होगा।' महाराजश्रीने कहा—'यह तो ठीक है, श्रद्धापूर्वक साधनासे सब सम्भव है। साधन क्षेत्रमें उन्नति करनेके लिये गुरुदेवके अनुग्रहपर विश्वास सर्वोपरि है।'

श्री रमण महर्षिके आश्रममें दो बार गये। अधिकांश लोगोंके प्रश्न करनेपर महर्षि पुस्तकोंकी ओर दिखा दिया करते थे; परन्तु

महाराजश्रीके प्रश्न करनेपर उन्होंने विस्तारसे उत्तर दिया। उनके उत्तरका सार यह था, 'जिसको जाननेकी इच्छा है, वह अपनेको जान ले तो वही ब्रह्म है। जिसमें इच्छा है, उसीमें अज्ञान है। इच्छा तुममें है, इसलिये अज्ञानी भी तुम्हीं हो। अज्ञान किसको हैं, यह मत पूछो, अपनेको जानो। तब अज्ञान अपने-आप मिट जायगा।' ध्यानके सम्बन्धमें प्रश्न करने पर उन्होंने कहा—'ध्यान भी अपना ही करना चाहिये। 'मैं कौन हूँ', इसका ध्यान करो। 'यह' से 'मैं' को अलग कर लेने पर अनुभव करोगे कि 'मैं' को परिच्छिन्न करनेवाली कोई भी वस्तु नहीं है।' महाराजश्रीने उनके साथ बैठकर भोजन भी किया। उनकी रहनी बहुत ही सीधी-सादी थी। उसमें कोई बनावट नहीं थी। वे साधारण-से-साधारण काम, जैसे, शाक सुधारना अपने हाथसे कर लेते थे। उनके जीवनमें जीवन्मुक्तिका विलक्षण सुख देखनेमें आता था। उनके पास रहनेवालोंमें भी दो तरहके लोग थे। एक वे जो 'मैं कौन हूँ' का अनुसन्धान करते थे, दूसरे वे जो महर्षि रमणको ही भगवान् मानकर उनकी सेवा-पूजा करते थे। महाराजश्रीको रमण महर्षि बहुत अच्छे लगे।

महाराजश्रीने संन्यास ग्रहणके अनन्तर दैवी सम्पद् महामण्डलकी तीर्थयात्रा स्पेशल ट्रेनमें दो बार तीन-तीन महीने तक समग्र भारत वर्षकी यात्रा की। दोनों ही दिल्लीसे प्रारम्भ होकर दिल्लीमें समाप्त हुई। पहली यात्रामें विरक्त महात्मा

श्री मङ्गलहरिजी साथ थे-और दूसरीमें शताधिक वयके श्री हीरानन्दजी । दोनों ही यात्रामें स्वामी श्री भजनानन्दजी एवं सदानन्दजीने हम लोगोंकी सुख-सुविधाका बहुत सुन्दर प्रबन्ध किया । यात्री भी सत्संगी ढंगके थे। महामण्डलेश्वर स्वामी श्री शुकदेवानन्दजीके कारण प्रार्थना एवं सत्संगकी धूम थी । बड़े-बड़े नगर एवं मुख्य-मुख्य तीर्थोंमें दो-दो तीन-तीन दिन तक रहकर व्याख्यान-प्रवचन हुए । अहिन्दीभाषी जनतामें वहाँके दुभाषिये अनुवाद करते । दक्षिणमें इतना स्वागत-सत्कार प्राप्त हुआ और इतने भाषण हुए कि वह अलग चर्चाका विषय है।

विष्णुकांचीमें काञ्ची कामकोटिपीठाधिपति शंकराचार्यजीका सत्संग हुआ । जिस समय हम लोग उनके पास गये, एक साधारण-सी चारपाई पर वे बैठे हुए थे । शरीरपर केवल एक लंगोटी । भस्माच्छादित भाल। उन्होंने विना प्रश्नके स्वयं उपदेश किया । वे बोले—'उपनिषदोंमें जो आत्माके दर्शनका वर्णन है, उसका अर्थ केवल इतना ही है कि अनात्माका दर्शन नहीं करना चाहिये; क्योंकि अनात्माका दर्शन अयथार्थ दर्शन है। तत्त्वदृष्टिसे सब अपना आत्मा ही है । उसमें द्रष्टा-दृश्यका भेद नहीं है।'

इन दोनों यात्राओंमें बहुत आनन्द रहा। सभी प्रान्तोंमें कहींके गवर्नर, कहींके मुख्य मन्त्री, कहींके मेयर और जनताकी अपार

भीड़ स्वागत-सत्कार करनेके लिये उपस्थित थी। पहली बार मार्गमें मावलंकर और दूसरी बार नन्दाजी मिलने आये। सभा-व्याख्यान और जुलूसोंकी तो गणना होना ही असम्भव है। इनका विवरण दैवी सम्पद् मण्डल वालोंने प्रकाशित किया है। इसी यात्राके सिलसिलेमें ओंकारमान्धातामें महाराजश्रीने नर्मदामें स्नान करते समय स्वामी श्री भजनानन्दजी आदि चार-पाँच महात्माओंको बुलाकर नर्मदाजलसे स्वामी श्री शुकदेवानन्दजी महाराजका अभिषेक-तिलक कर दिया और कहा कि 'हम लोग आपको महामण्डलेश्वर पदपर अभिषिक्त करते हैं।' सचमुच थोड़े ही दिनोंमें दशनामी संन्यासियोंने आपको महामण्डलेश्वर मान लिया।

*

वृन्दावन और ट्रस्ट

इस यात्राके पहले महाराजश्री श्री उड़ियाबाबाजीकी उपस्थितिमें भी और उनके निर्वाणके अनन्तर भी अधिकांश वृन्दावनमें ही रहे। दो-चार महीनेके लिये कभी-कभी बाहर हो आया करते थे। प्रायः सन् ४२ से ५६-५७ तकका समय व्रजभूमिमें ही व्यतीत हुआ। बाबा और साईंके समयमें तो स्नेह, भक्तिभाव एवं सत्सङ्गका इतना उत्कृष्ट वातावरण रहा कि उसे छोड़कर कहीं जानेका मन ही नहीं हुआ। दोनों समय प्रवचन, दोनों समय सत्संग। पता ही नहीं चला कि वर्ष पर वर्ष कैसे बीत रहे हैं। बाबाका निर्वाण होनेके अनन्तर लोगोंने और विशेषकरके श्री हरिबाबाजीने श्री उड़ियाबाबा ट्रस्टका ट्रस्टाधिपति महाराजश्रीको बना दिया और उन्होंने इस शर्तपर वह पद स्वीकार किया कि आश्रमकी व्यवस्थाका कोई बन्धन, प्रबन्धका कोई भार उनके ऊपर नहीं रहेगा। अब भी महाराजश्री उसके ट्रस्टाधिपति हैं। उसके सिवाय मथुराके

श्रीकृष्णजन्मभूमि ट्रस्ट, ऋषिकेशके स्वर्गाश्रम ट्रस्टके ट्रस्टी तथा जोधपुर एवं पटनाके सत्संग भवनोंके ट्रस्टाधिपति हैं ; परन्तु चन्दा और प्रबन्ध सम्बन्धी कार्यका भार आपने कहीं भी नहीं लिया। वृन्दावनके आश्रममें श्री हरिबाबाजी महाराज अधिकांश रहते हैं। प्रतिदिन कथा-कीर्तन होता है। वृन्दावनके सैकड़ों निष्ठावान् सत्संगी प्रतिदिन लाभ उठाते हैं। महाराजश्री जब वहाँ जाते हैं, प्रातःकाल वेदान्त एवं सायंकाल भक्ति-सम्बन्धी सत्संग चलता है।

*

वेदान्ती और भक्तोंमें समानता

महाराजश्रीकी यह विशेषता है कि वे निर्गुण ब्रह्मके निरूपणके समय शुद्ध वेदान्त एवं सगुण ब्रह्मके निरूपणके समय शुद्ध भक्तिभावका उपदेश करते हैं। भावमें ज्ञान और ज्ञानमें भावका मिश्रण नहीं करते। इसीसे एक ओर कट्टर से कट्टर वेदान्ती भी उनके सत्संगको अविद्याग्रन्थिभेदक मानते हैं तो दूसरी ओर वृन्दावनके रसिक भी उनका निरूपण सुनकर युगलप्रेमरसमाधुरीके आस्वादनमें तन्मय हो जाते हैं। जब वे 'वृन्दावन विहारी मुरलीमनोहर पीताम्बरधारी साँवरे सलोने व्रजराजकुमार'—ऐसा उच्चारण करके श्यामसुन्दरका वर्णन करते हैं, तब श्रोताओंको मानो प्रत्यक्ष श्रीकृष्णके दर्शन होने लगते हैं। महाराजश्रीके सामने बहुत-से भक्त यह लालसा प्रकट करते हैं कि हमें भगवान्‌की झाँकी दिखाओ। महाराजश्री प्रेमके प्रसङ्गमें ऐसी बात कहते हैं कि 'प्रेमका सर्वोत्तम रूप समरसता ही है। एकाङ्गी प्रेम केवल प्रेमकी पूर्वावस्था है; क्योंकि उसमें व्याकुलता है, अभाव है और सामनेका कोई आकर्षण नहीं है। चातक चकोर, मछली, कुमुद, कमलिनी—सब इसी कक्षामें आते हैं।

यह पूर्ण प्रेमका प्रकाश नहीं है। सारसमें वियोग नहीं, चक्रवाकमें संयोग नहीं, इसलिये वे भी प्रेमके अधूरे उदाहरण हैं। सम्पूर्ण प्रेमकी अभिव्यक्ति केवल राधा-कृष्णके प्रेममें ही है। अभिसारमें भी देरी और दूरी है, छद्ममें भी देरी और दूरी है। इसलिये देश, कालकी उपाधिसे युक्त यह प्रेम पूर्ण नहीं हो सकता, पूर्णताकी प्राप्तिका साधन हो सकता है। अभिसार और छद्म—दोनोंमें ही प्रत्यक्ष विरहकी स्थिति है। मिलनकी अवस्थामें भी अनमिलेपनकी प्रतीति चित्तकी विपरीतता है और वह भी प्रेमका लक्षण होनेपर भी प्रेमका स्वरूप नहीं है। जो संयोगमें बढ़े और वियोगमें घटे अथवा संयोगमें घटे और वियोगमें बढ़े, वह तो प्रेम ही नहीं है। प्रेमपर देरी और दूरीकी उपाधिका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। भ्रान्ति चाहे अविद्याजन्य हो चाहे प्रेमजन्य, दुःखका ही कारण बनती है और उसमें परमाह्लादस्वरूप प्रेमकी सम्पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं है। मानमें भी न्यूनाधिक्यका भाव रहता है। भले ही क्षणिक हो; परन्तु प्रियतममें दोषका अध्यारोप भी तत्काल दुःखका ही कारण होता है। इसलिये प्रेमका उत्कृष्टरूप युगलका सामरस्य ही है। प्रेमके तरंगायित रूपमें कृष्ण राधा एवं राधा कृष्ण होते रहते हैं। यह कोई निर्गुण निष्क्रिय ब्रह्मका स्वरूप नहीं सगुण सक्रिय दिव्य स्पन्दनात्मक ब्रह्म है। इसलिये प्रेममें किसी प्रकारके भेदकी उपस्थिति नहीं रहती। उसकी अनिर्वचनीयता भी स्वयंप्रकाश एवं अनुभवगम्य है। इसीसे इसको प्रेमाद्वैत अथवा रसाद्वैत कहते

हैं। यह ब्रह्मशक्तिका परिणाम अथवा विक्षेप नहीं है, स्वयं सविशेष ब्रह्म ही है।'

महाराजश्रीके इस निरूपणको वृन्दावनके रसिकजनोंने खूब सुना एवं समझा है। श्रीधाम वृन्दावनमें चाहे राधावल्लभ सम्प्रदायके गोस्वामीपाद हों, चाहे राधारमणके, चाहे निम्बार्क सम्प्रदायके हों, चाहे रामानुज सम्प्रदायके, सभी आचार्य अपने-अपने उत्सवोंके विशेष अवसरपर महाराजश्रीको बड़े आदर और प्रेमसे बुलाते हैं और अपने-अपने सम्प्रदायके सिद्धान्त, साधन एवं रस-पद्धतिपर प्रवचन श्रवण करते हैं। बहुतसे रसिकजन एकान्तमें मिलकर अपने अनुभव सुनाते हैं और महाराजश्रीकी सम्मतिसे अपने-अपने भजन-साधन करते हैं। महाराजश्री सभी भावुक सम्प्रदायोंको एकरस दृष्टिसे देखते हैं, सबका आदर करते हैं और सबसे प्रेम करते हैं। इस निरूपणके प्रसङ्गमें यदि कोई शांकर वेदान्तका प्रश्न कर दे तो उसको तत्काल शांकर वेदान्तकी रीतिसे उत्तर देकर फिर अपना पूर्व प्रसङ्ग चलाते हैं और शांकर वेदान्तके प्रसङ्गमें यदि कोई रस-सम्बन्धी प्रश्न कर दे तो उसको रस सम्प्रदायकी रीतिसे उत्तर देकर फिर पूर्व प्रसङ्ग चलाते हैं। अन्य विषयक प्रश्नको विक्षेप नहीं मानते और अपने निरूपणीय प्रसङ्गका परित्याग भी नहीं करते। प्रश्नोत्तर कालमें सर्वदा ही यह स्थिति देखी जाती है।

★

स्वामी श्री प्रेमपुरीजीके सत्संगमें

महाराजश्री 'कल्याण' परिवारमें रहते समयसे ही सन् चौंतीससे बम्बईमें आने लगे थे। भागवत सप्ताह, कथा-व्याख्यान भी करते थे। संन्यासी होनेके पश्चात् लक्षचण्डी महायज्ञमें भी आये थे, जिसमें सहस्रों व्यक्तियोंने भागवतामृतका रसास्वादन किया था; परन्तु दैवी सम्पद् महामण्डलकी प्रथम तीर्थयात्रा स्पेशल ट्रेनमें बम्बई आना एक विलक्षण संयोग बन गया। वेदान्त सत्संग मण्डलने प्रेमकुटीरमें प्रवचनके लिये आमन्त्रित किया। स्वामी श्री प्रेमपुरीजी महाराज 'कैलास' की महामण्डलेश्वरकी पदवी छोड़कर यहीं निवास कर रहे थे और अपने स्वाध्याय-प्रवचनके द्वारा लोगोंके हृदयमें पवित्रता एवं तत्त्वज्ञानका संचार कर रहे थे। महाराजश्रीसे उनका मिलना तो पहले भी अनेक बार हो चुका था; परन्तु इस बार तो जैसे सचमुच मिल गये। उनकी उपस्थितिमें महाराजश्रीने वेदान्त सम्बन्धी दो-तीन प्रवचन किये। उन्होंने प्रतिपादन किया सरल भाषामें, तरलगतिसे और विरल पद्धतिमें 'प्रत्येक कृतिसाध्य प्रयत्नका, चाहे कर्म हो, उपासना या योग-अन्तिम फल अनुभव ही है। परिच्छिन्न वस्तुका अनुभव होगा

तो वह पुनः संस्कार, वासना और प्रयत्नका कारण बनेगा और अपरिच्छिन्न वस्तुका अनुभव होगा तो वह सदा अपरोक्ष रहेगा एवं सारे ही संस्कार, वासना तथा प्रयत्न बाधित हो जायँगे। फिर कोई कर्तव्य शेष नहीं रहेगा।' महाराजश्रीकी प्रतिपादन-शैली स्वामी श्री प्रेमपुरीजीको बहुत ही युक्तियुक्त, प्रिय एवं आवरणभङ्ग करनेवाली लगी। उन्होंने भरी सभामें उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की और जो लोग ज्ञानके पश्चात् कर्मकी कर्तव्यताका प्रतिपादन करते हैं, उन्होंने उनका खण्डन भी किया। इस प्रकार दोनोंमें परस्पर आकर्षणकी स्थापना हुई।

उसके पश्चात् बम्बईमें उन्हींकी देखरेखमें एक विशाल वेदान्त सम्मेलनका आयोजन हुआ। सारे भारतवर्षके संन्यासी, उदासी, महन्त, मण्डलेश्वर, वेदान्तके वक्ता उपस्थित हुए। स्वामीजीने नानावटी दम्पति वीणा–प्रवीणाको वृन्दावन भेजकर महाराजश्रीको भी बुलवाया। सम्मेलनमें महाराजश्रीके अनेक भाषण हुए। 'वेदान्त हमें क्या सिखाता है?' 'वेदान्तका व्यावहारिक रूप क्या है' आदि-आदि विषयोंपर महाराजश्रीके प्रभावशाली शास्त्र, युक्ति समन्वित ओजस्वी, प्रसन्नगम्भीर भाषण हुए। बम्बईकी बीस-तीस सहस्र जनता, सैकड़ों सन्त-महन्त, भिन्न-भिन्न सम्प्रदायोंके आचार्य नेता एवं मन्त्रीगण भी मुग्ध हो गये। स्वामी श्री प्रेमपुरीजी महाराजकी प्रसन्नताका तो पारावार नहीं था। इसी अवसरपर

योजनामन्त्री श्री गुलजारीलाल नन्दाने साधुओंकी संस्था बनानेका प्रस्ताव रखा। सब सन्त तो चले गये, परन्तु स्वामीजीने महाराजश्रीको रोक लिया और उनका प्रतिदिन प्रेमकुटीरमें वेदान्तपर तथा सेठ मटरूमल बाजोरियाके निवासस्थानपर श्रीमद्भागवतपर प्रवचन प्रारम्भ हुआ। जो लोग दोनों समय सुनते, वे आश्चर्य करते कि जो प्रातःकाल अध्यस्त-अधिष्ठानका इतना गम्भीर निरूपण करता है, वही सायंकाल इस प्रकार यशोदोत्सङ्गलालित नन्दनन्दन श्यामसुन्दरकी अनुरागमाधुरीमें कैसे डुबो देता है? इस बार भी महाराजश्री थोड़े ही दिनों यहाँ रह सके, क्योंकि भारत साधु समाजकी प्रथम बैठकमें सम्मिलित होनेके लिये जाना पड़ा।

स्वामी श्री प्रेमपुरीजी महाराजको महाराजश्रीके सत्संगमें इतना सुख मिला कि वे यही चाहते थे कि महाराजश्री उन्हींके पास रहें। उन्होंने प्रेमकुटीरमें गोपीगीतकी कथा करवायी, जब सामान्य नियमके अनुसार वहाँ वेदान्तके सिवाय दूसरे विषयपर प्रवचन नहीं हो सकता। प्रेमकुटीरका प्रत्येक श्रोता इस बातका अनुभवी है कि महाराजश्रीने वहाँ माण्डूक्य कारिका और श्रीमद्भागवतके प्रवचनोंमें कैसा ज्ञानका समुद्र एवं भक्तिकी मन्दाकिनी प्रवाहित की है। स्वामी प्रेमपुरीजी महाराज कहा करते थे कि 'मैं पचपन वर्षसे संन्यासी हूँ और मैंने सारे भारत-

वर्षमें, विशेषतया उत्तराखण्डमें जा-जाकर बड़े-बड़े महापुरुषोंका सत्संग किया है; परन्तु सत्संगका रस तो मुझे अब आया है।' महाराजश्रीके प्रवचन सुनकर उनके मुखारविन्दपर भावोंकी छटा देखते ही बनती थी। महाराजश्री बार-बार वृन्दावन जाते और वे बार-बार बुलाते। विदाईके समय उनके नेत्रोंसे आँसूकी धारा बहने लगती और दूसरोंको भी रुला देते। वे महाराजश्रीसे कहते थे कि बम्बईको सत्संगके रंगसे सराबोर कर दो।' वे यहाँ सत्संगकी स्थायी व्यवस्था करना चाहते थे; परन्तु वह न हो सकी। उनकी उपस्थितिमें और निर्वाणप्राप्तिके अनन्तर भी महाराजश्रीने मुम्बादेवीके मैदानमें, सुन्दरबाई हॉलमें और क्रॉस मैदानमें इतने बड़े-बड़े भागवत सप्ताह किये हैं, जिनमें दस-दस सहस्र श्रोताओंने आनन्द लिया। बम्बईके सत्संगके सम्बन्धमें अधिक लिखना उपयुक्त नहीं है; क्योंकि इन दिनों महाराजश्री बम्बईमें ही विराजते हैं। यहाँके भिन्न-भिन्न सभा-मण्डपोंमें महीनों तक व्याख्यान, सत्संग, प्रवचन चलते रहते हैं और यहाँके वेदान्त सत्संग मण्डल एवं सत् साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट बड़े प्रेमसे उसकी व्यवस्था करते रहते हैं।

★

भारत साधु समाजकी अध्यक्षता

महाराजश्रीकी न केवल विरक्त, अनुभवी महापुरुषोंमें ही आदर-प्रतिष्ठा है, प्रत्युत भिन्न-भिन्न सम्प्रदायोंके जो साधु, महन्त-मण्डलेश्वर हैं वे भी बहुत प्रेम और आदर करते हैं। इसीसे जब कोई ऐसे साधुओंकी संस्था बनती है, वे महाराजश्रीको प्रमुखता देते हैं। जब सार्वभौम साधु मण्डल बना, तब उसके कानपुर अधिवेशनमें महाराजश्री अध्यक्ष बने। श्री करपात्रीजी महाराजने प्रयाग कुम्भमें साधुसंघ बनाया, तो उसमें अध्यक्षके पदपर वेद भगवान् और उपाध्यक्षोंमें महाराजश्रीको भी मनोनीत किया। इसी प्रकार जब दिल्लीमें भारत साधु समाजका गठन हुआ तो उसमें महाराजश्रीको उपाध्यक्ष बनाया गया। बादमें महाराजश्री कार्यकारी अध्यक्ष हुए। अब ढाई वर्षसे अध्यक्षपदपर हैं, जबकि वह पद केवल एक वर्षमें लिये होता है और महाराजश्रीको उस पदपर रहना पसन्द भी नहीं है। एक वर्ष पूरा होनेपर उन्होंने त्यागपत्र भी दे दिया था; परन्तु कार्य समितिने यह कहकर त्यागपत्र लौटा दिया कि ऐसा करनेसे तो

भारत साधु समाजकी बहुत बड़ी हानि हो जायगी। यह बात समाजकी कार्यवाहीमें लिख ली गयी है।

महाराजश्री बाल्यावस्थासे ही व्यक्तिगत साधना करते रहे हैं और उसीके पक्षपोषक भी। वे व्यक्तिकी हृदय-शुद्धिसे ही सामाजिक शुद्धि मानते हैं। अधिकांश विरक्तोंमें ही रहे हैं और त्याग, निःस्पृहता, भगवद्भक्ति एवं ब्रह्मनिष्ठाको ही साधुका सर्वोत्तम गुण मानते हैं। सभा संस्थाओंकी दलबन्दीसे वे घबराते हैं और जहाँ तक उनका वश चले बचते भी हैं। मालवीयजीकी सनातनधर्म सभा, काशीके ब्राह्मण महासम्मेलन, महामहोपाध्याय पं. लक्ष्मण शास्त्री द्राविडके वर्णाश्रम स्वराज्य संघ एवं कांग्रेसके सन् तीससे इकतालीस तकके आन्दोलनका उन्हें अनुभव है। प्रायः दलबन्दीके कारण ही संस्थाओंमें भ्रष्टाचार आता है। इसलिये वे चाहते हैं कि साधक पुरुष उन संस्थाओंके दलदलमें डूबकर अपनी आध्यात्मिक उन्नति खोये नहीं। सम्बन्ध जोड़ना ही पड़े तो अनासक्त भावसे ही जोड़े; अपनी शक्ति, बुद्धिके अनुसार सेवा कर ले और भजनके समय सब सम्बन्धोंसे ऊपर उठ जाय।

भारत साधु समाजके इतिहासमें इस दृष्टिसे महाराजश्रीका योग

एक चमत्कार ही है। उनका जयपुर अधिवेशनका भाषण भारत साधु समाजका एक प्रकारसे नीति-भाषण है। पटनाके अधिवेशनमें जो कुछ उन्होंने कहा और शरीर रुग्ण रहते हुए भी श्रमपूर्वक जो कुछ किया, वह संस्थाको संकटसे बचानेवाला एवं उन्नतिकी ओर अग्रसर करनेवाला था। यदि सब साधुओंका सहयोग मिला तो संस्थाका भविष्य उज्ज्वल है।

*

सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट

महाराजश्रीकी लेखनशक्ति किशोर अवस्थासे ही अभिव्यक्त हो गयी थी। बारह वर्षकी अवस्थामें पहला लेख काशीके साप्ताहिक 'सूर्य'में प्रकाशित हुआ था। दूसरा वहींकी मासिक पत्रिका 'आर्य महिला'में। 'कल्याण' परिवारमें जानेके बाद तो सहस्रों पृष्ठोंकी सृष्टि हुई। 'श्रेय,' 'संकीर्तन,' 'परमार्थ' आदिके लेखोंकी तो गणना ही नहीं है। गोरखपुर, जबलपुर, वृन्दावन, बम्बई आदिसे फुटकर पुस्तकें भी प्रकाशित होती रहीं। दो वर्ष पूर्व जब माण्डूक्य-प्रवचन प्रकाशित हुआ और जिज्ञासुओंने उसकी महत्ता और आवश्यकताका मूल्यांकन किया तब यह निश्चय किया गया कि एक प्रकाशन संस्था बनायी जाय। संकल्प भरकी देर थी, बम्बईके बड़े-बड़े प्रतिष्ठित एवं सम्पन्न पुरुषोंके सहयोगसे सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट रजिस्टर्ड हुआ, जिसमें देवीदयाल स्टीलवाले, मरीवाले, कामदार, खटाउ, किशनचन्द चेलाराम आदि सम्मिलित हुए। ट्रस्टने एक वर्षकी

अल्प अवधिमें ही सात-आठ पुस्तकोंका प्रकाशन कर लिया। त्रैमासिक 'आनन्द-वाणी' प्रारम्भ कर दी। श्रीमद्भागवतका एक विशाल संस्करण छापनेका विचार है और सत्संगके अनेक विराट् आयोजन, जिनमें क्रॉस मैदानका भागवत सप्ताह, के. सी. कालेजका 'एकादश स्कन्ध,' लेडी नॉर्थकोटका वाल्मीकि रामायण, एवं विष्णुपुराण बड़े उत्साहके साथ सम्पन्न किये हैं। इस संस्थाका भविष्य बहुतही महत्त्वपूर्ण है। आशा है, यह संस्था धर्म, भगवद्भक्ति एवं तत्त्वज्ञानके प्रचार-प्रसारकी दिशामें अपनी श्रेष्ठ भूमिका निभायेगी।

*

शास्त्रीजीकी भावना

हमारे सम्मान्य मित्र श्री द्वारिकाप्रसादजी शास्त्री, जो वर्षों महाराजश्रीके साथ रहे, उनके समीप रहकर साधना की, विद्याभ्यास किया, के द्वारा लिखे संस्मरणोंके कुछ अंश इस प्रकार हैं:—

'महाराजश्री किसी मत-मतान्तर अथवा धर्म समुदायके वादविशेषको स्वीकृति देकर धर्मोपदेश करनेवाले आचार्य नहीं हैं। वे सन्त हैं। मनुष्य जीवनको उत्कर्षकी ओर ले जानेवाले सर्वविध आचार-विचारोंके प्रकार उनकी गुरुतामें सत्ता एवं स्फूर्ति पाते हैं। सन्तका स्वरूप-बोध करानेवाली महर्षि व्यासकी यह उक्ति—

'वादवादांस्त्यजेत् तर्कान् पक्षं कंचन संश्रयेत्' महाराजश्रीमें पूर्णतः चरितार्थ होती है। वे किसीके छेदन-भेदनकी प्रवृत्तिके कभी आश्रय नहीं बनते और न ही किसी वादी-प्रतिवादी अथवा विपक्षीके विरोधके विषय ही; क्योंकि अविरोधी अद्वैत परमात्म सद्वस्तु ही उनका स्वरूप है, उसीमें उनकी निष्ठा है। अद्वैत परमार्थ सत्य ही उनकी क्रिया, वाणी, भाव एवं विचारों द्वारा निरन्तर अभिव्यञ्जित होता है।'

'छलकते हुए आनन्द और आह्लादकी तो महाराजश्री साक्षात् प्रकट मूर्ति ही हैं। जो भी निकटतासे उनके सम्पर्कमें आ चुका है, वह निश्चय ही उनकी पवित्र एवं उज्ज्वल स्नेह-रसधारामें अवगाहन किये विना नहीं रहा। समाधि, ज्ञान एवं आनन्दका विलक्षण समन्वय महाराजश्रीके जीवनमें प्रकट है।' उनका अल्हड़ जीवन भी देखते ही बनता है। शरीरपर ढीला-ढाला कटिवस्त्र और कभी चादर है तो कभी नहीं। बाल्यावस्थामें और गृहस्थ जीवनमें भी महाराजश्री अत्यन्त सादगीसे रहे। खादीका कुरता, जिसमें कभी बटन होते और कभी नहीं एवं धोती मात्र ही उनकी वेषभूषा रही। चप्पल या जूता उन्होंने कभी पहना नहीं। तेल, साबुन आदि शरीरके प्रसाधनोंसे सदा ही अरुचि रही। अब भी यही स्थिति है।

आपके कोमल एवं करुण स्वभावकी जो अमिट छाप शास्त्रीजीके मस्तिष्कपर पड़ी, उस घटनाका वर्णन करते हुए वे कहते हैं:—

'महाराजश्रीके गाँवके पास ही हरिजनोंके चार-पाँच घर थे। उन दिनों छुआछूतकी प्रबल भावनाके कारण हरिजनोंको ग्रामके बाहर ही रहनेके लिये स्थान मिलता था। एक दिन एक हरिजनके घरमें आग लग गयी। कोई भी सवर्ण उसे सहायता देने न पहुँचा। युवक शान्तनुका कोमल चित्त इसे सह न सका। वे सामाजिक विरोधकी परवाह किये विना अकेले ही दौड़े और स्त्री,

बच्चों तथा सामग्री आदिकी जितनी भी रक्षा कर सके, आगसे जूझकर की। उनके अदम्य उत्साह और साहसको देखकर अन्य ग्रामवासियोंने भी सहयोग किया। उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की।'

महाराजश्रीके सम्पर्कमें आनेवाले सभी कुछ-न-कुछ लेकर जाते हैं, लौकिक-अलौकिक, व्यवहार-परमार्थ—सभी कुछ। जिज्ञासु उनसे अपनी शंकाओंका समाधान पाते हैं और भक्त आनन्दमुकुन्द, मदनमोहन, पीताम्बरधारी श्यामसुन्दर, दशरथतनय कोशलराजकुमार राघवेन्द्र रामभद्र अथवा आशुतोष अवढरदानी उमापति शंकर।

★

बाहर-भीतर एक

मेरे साथी ब्रह्मचारी श्री प्रबुद्धानन्दजीने एक दिन महाराजश्रीसे पूछा—'आप सभीसे अत्यधिक स्नेह करते हैं, इसका क्या कारण है?' वे बोले—

'भाई, मुझे ऐसा कभी नहीं लगता कि इस देहके भीतर मैं हूँ और बाहर कोई अन्य। यदि है, तो सब अपना-आप है और नहीं है, तो जैसे और अपना-आप नहीं है उसी तरह यह शरीर और मन, जिसे तुम मेरा मानते हो, यह भी मेरा नहीं। वस्तुतः एक आत्मवस्तुके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है। अपने ब्रह्मपनेके अज्ञानसे ही, अन्य कुछ है, ऐसी भ्रान्ति होती है और इसकी निवृत्ति ही जिज्ञासुका लक्ष्य होना चाहिये।'

ब्रह्मचारीजी आगे लिखते हैं—'इसीलिये महाराजश्रीके जीवनमें प्रत्यक्ष दीखता है कि चाहे कोई मूर्ख हो या विद्वान्, स्त्री हो या पुरुष, बालक या वृद्ध, निर्धन या धनी, सबके प्रति आपका समान प्रेम है। महाराजश्री नास्तिकोंको भी उतना ही प्यार करते हैं जितना किसी आस्तिक, भक्त और जिज्ञासुको। जो एक बार भी

आपके पावन सम्पर्कमें आ गया, वह सदा-सर्वदाके लिये आपका ही हो जाता है। प्रतिपल यही अनुभव करता है कि यह तो मेरे जन्म-जन्मके पथ-प्रदर्शक और मित्र हैं। आपके कथा-प्रवचन श्रवणका सौभाग्य जिसे एक बार भी मिलता है वह सदाके लिये आपकी कथाका एक अच्छा श्रोता बन जाता है। आपके सत्संगकी एक विशेषता यह भी है कि उसमें पुरुषोंकी संख्या स्त्रियोंसे हमेशा बहुत अधिक होती है। उसमें किशोर और युवक भी बड़ी संख्यामें सम्मिलित होते हैं।

महाराजश्री भक्तोंमें भक्त और ज्ञानीके लिये ज्ञानी हैं। कर्मीको आपमें कर्मठताके दर्शन होते हैं तो योगी आपके सहज, शान्त, धीर, गम्भीर स्वभावसे प्रेरणा पाता है। जिज्ञासुके तो आप सर्वस्व ही हैं। आपके समझानेकी शैली अत्यन्त सरल, युक्तियुक्त और हृदयस्पर्शी होती है। आपके विचारोंका गाम्भीर्य, चित्तकी समाधि और जीवनकी प्रेममयता देखने योग्य है। दूर रहनेवालोंको लगता है कि आप बड़े ठाठ-बाटसे रहते हैं; परन्तु आपके जीवनमें जो सादगी और सरलता है उसको कोई पास रहकर ही जान सकता है। जो आपके जितने अधिक निकट आता है वह आपको देखकर उतना ही अधिक आश्चर्य प्रकट करता है। उसको आप ज्ञान, वैराग्य और आनन्दके मूर्तिमान् स्वरूप ही मालूम पड़ते हैं। वास्तवमें आपके शरीरके कण-कण, रोम-रोम, रग-रग विश्वहित, भगवत्प्रेम और ब्रह्मात्मैक्यज्ञानसे परिपूर्ण हैं। अधिक क्या कहें,

आपका जीवन ब्रह्मका जीवन है । वह इतना निर्भय, उन्मुक्त और उदार है कि जब हम मन ही मन उसपर विचार करने लगते हैं तब हम मानो आश्चर्य-समुद्रमें उन्मज्जन-निमज्जन करने लगते हैं ।

पवित्र गरीबी

महाराजश्री साधक जीवनकी सफलता और पूर्णताके लिये दो बातें विशेष रूपसे बतलाते हैं—i. पवित्रता अर्थात् जीवनमें काम-क्रोधादि दोषोंका अभाव, और सदाचार, संयम आदि गुणोंका होना और ii. गरीबी अर्थात् सादगी । कम से कममें जीवन निर्वाह । आप कहते हैं कि यह दो बातें साधकको ईश्वरके बहुत निकट ले जाती हैं ।

शुद्धि और ज्ञान

महाराजश्री कहते हैं—शरीरसे सेवा—श्रम, इन्द्रियोंका संयम, मनमें सद्भावना, बुद्धिमें विवेक और अहं का निरहं होना ही साधनाकी सर्वोपरि अवस्था है। सिद्ध वस्तु साधन-साध्य नहीं है। साधनाके द्वारा अन्तःकरणके मल और विक्षेप रूप दोषोंके निवृत्त होनेपर आवरण-भंग तो तत्त्वमसि आदि महावाक्यजन्य चरमा वृत्ति द्वारा ही होता है। जो परमात्मा अभी, यहीं और प्रत्यक् चैतन्यके रूपमें ही विद्यमान है, उसकी अप्राप्तिका कारण है अज्ञान और उसकी निवृत्ति एकमात्र ब्रह्मात्मैक्य-ज्ञानसे ही हो सकती है। अन्य सारे परम्परा, बहिरंग और अन्तरंग साधन इस ज्ञानके उदयमें सहायक होनेसे ही उपादेय हैं। साधनाके द्वारा व्यक्तिगत परमोत्कर्ष होता है और सिद्ध वस्तुका बोध होनेपर परिच्छिन्न व्यक्तित्व, उनकी समष्टि और उनकी बीजावस्था अव्यक्त तथा उनमें पड़ा हुआ आभास—सब बाधित हो जाता है; क्योंकि सम्पूर्ण परिच्छिन्नताओं और उनके अभाव से उपलक्षित ब्रह्म अपनी आत्मा ही है—इस ऐक्यज्ञानको ब्रह्मज्ञान कहते हैं।

★

बालुका ब्रह्म

स्वामीजी, सत्संगके समय मौज आनेपर श्री उड़ियाबाबाजीकी एक बात बड़े प्रेमसे बताते हैं। एक बार कर्णवासमें बाबाके साथ गंगाजीकी बालुका पर बैठे हुए थे। सत्संग हो रहा था। बाबाने दोनों हाथोंसे गंगाजीकी बालुका उठायी और कहा—'शान्तनु ! जब तक यह बालुका साक्षात् ब्रह्म न मालूम पड़े तब तक समझना कि अभी ब्रह्मज्ञान अधूरा ही है। ब्रह्मबोध होनेपर तो ब्रह्मसे पृथक् एक तृण, एक कण भी नहीं है। विवेक करते समय ब्रह्म स्थूल, सूक्ष्म कारण—सबसे विलक्षण है, यह बात कही जाती है; परन्तु ब्रह्मबोध होनेपर तो एक अद्वय आत्मवस्तुके अतिरिक्त न ईश्वर ही है और न जगत् ही। ईश्वरकी अन्यता, जगत्का सत्यत्व और आत्माकी परिच्छिन्नता, यह तीनों ही ब्रह्मबोधसे बाधित हो जाते हैं।' इसीलिये महाराजश्री प्रायः कहा करते हैं कि 'यह जो कुछ दीख रहा है सो सब सच्चिदानन्दघन ब्रह्म ही है। यह सम्पूर्ण सृष्टि वृन्दावन है। समस्त स्त्री वाचक वस्तुएँ राधा और पुरुषवाचक वस्तुएँ कृष्ण हैं। इस सृष्टिके विशाल रंगमंचपर जिधर देखो उधर राधा-कृष्ण युगलसरकारका ही मिलन—दिव्य विहार हो रहा है।'

★

मन हटा लो

महाराजश्री भावुक और विचारवान् दोनों प्रकारके साधकोंसे कहा करते हैं कि 'भाई, चाहे भावसे विठाओ चाहे विचारसे; परन्तु बैठाओ अपने हृदयमें परमात्माको ही।'

जब कोई साधक आपसे ईश्वरप्राप्ति के सम्बन्धमें पूछता है, तब आप उससे बड़े प्रेमसे कहते हैं, 'भाई! तुमको जो-जो ईश्वर न मालूम पड़े उस-उसकी ओरसे अपने मनको हटा लो। इस प्रकार मन हटाते-हटाते जिसे छोड़ा न जा सके, उसीका नाम ईश्वर है। संसार तो वह है जिसको हम पकड़कर रखना चाहें और प्रयत्न करनेपर भी जो हमारी पकड़में न आ सके, अपने-आप सरकता—छूटता जाय। और जिसे छोड़ना चाहें, फिर भी जो न छूटे, वह ईश्वर है।'

ठोस ईश्वर

स्वामीजी यह बात बड़ी युक्तिपूर्वक समझाते हैं कि प्राणिमात्र का इष्ट एकमात्र परमात्मा ही है। नास्तिक भी असलमें ईश्वरको ही चाहता है; परन्तु वह इस बातको जानता नहीं है कि मैं ईश्वरको ही चाहता हूँ। ईश्वर केवल भावना या कल्पनाकी वस्तु नहीं है, सर्वथा ठोस है। सब समय, सब जगह, सब रूपोंमें रहनेवाला जो अविनाशी ज्ञानस्वरूप आनन्द तत्त्व है उसीको शास्त्र ईश्वर कहते हैं। आजकल जो लोग ईश्वर शब्दसे चिढ़ते हैं, वे ईश्वर शब्दका ठीक-ठीक अर्थ मालूम न होनेसे ही चिढ़ते हैं। यदि उनको ईश्वर शब्दका ठीक-ठीक अर्थ मालूम हो जाय, तब वे समझेंगे कि सबका इष्ट एकमात्र ईश्वर ही है।

साधक जहाँ है, जिस स्थितिमें है उसे वहीं उसी स्थितिमें आप ईश्वर-दर्शन करा देते हैं; क्योंकि आपकी दृष्टिमें यह सृष्टि ज्यों-की-त्यों निर्विकार सच्चिदानन्दघन ब्रह्म ही है। महाराजश्री कहते हैं कि 'अज्ञात आत्माका नाम ब्रह्म है और ज्ञात ब्रह्म ही आत्मा है। ऐसे सर्वाधिष्ठान सर्वावभासक स्वयंप्रकाश सच्चिदानन्दघन आत्मस्वरूप अनुग्रह-विग्रह गुरुदेवके चरणकमलोंमें हम बार-बार प्रणाम करते हैं।

★

महाराजश्रीके सत्संगप्रेमी एक भक्तके उद्गार:—

नियमके पक्के

नियम पालन करनेके विषयमें महाराजश्रीके विचार बहुत दृढ़ है। आपका कहना है कि मनुष्यको अपने नियमोंका पालन थोड़ा कष्ट सहकर भी करना पड़े तो करना चाहिये। ये स्वयं भी अपनी कथाका नियम नहीं तोड़ते। चातुर्मास्य आदिमें एक बार कथाका नियम ले लेनेपर भले ही कमज़ोरी और थकान हो, रक्तचाप बढ़ा हो या ज्वर हो, स्वामीजी अपना नियम नहीं तोड़ते। यहाँ तक भी देखा गया है कि एक दिन इन्हें पन्द्रह-पन्द्रह मिनटके अन्तरपर दस्त लग रहे थे, तब भी ये कथाके लिये समयपर गये और प्रतिदिनकी तरह कथा की। आपका कहना है कि जब मनुष्य नियम पालनमें दृढ़ रहता है तो सारी बाधायें स्वयमेव मिट जाती हैं। एक बार श्री हरिबाबाजीने वृन्दावनमें दोनों समय एक वर्ष तक इनसे भागवतकी कथा सुननेका नियम लिया। वे प्रतिदिन निश्चित समयपर ही सुनना पसन्द करते थे। स्वामीजीने सालभरतक एक मिनिटकी देर-सबेर किये बिना उनको दोनों समय नियमपूर्वक कथा सुनायी।

सच है, नियम निष्ठामें विघ्न निवारणकी असाधारण शक्ति है।

★

बड़प्पन बिसर गया

निरभिमानता महाराजश्रीका सहज स्वरूप है। अपने बड़प्पनका कोई विचार किये विना ही ये बड़े-छोटे, अमीर-गरीब, साफ-गन्दे, शिक्षित-अशिक्षित और ब्राह्मण-शूद्र सबसे सहर्ष मिलते हैं और सबको प्रेम देते हैं। गरीब-से-गरीबके भी घर जानेमें, कहीं भी आसनके ऊँचे और नीचेपनका ख्याल किये विना बैठनेमें इन्हें कोई संकोच या हिचकिचाहट नहीं। मैंने अपनी आँखोंसे देखा है कि वृन्दावनमें एक बार एक गरीब प्रौढ़ व्यक्ति इनसे मिलने आया। गर्मीके दिन, लगभग ग्यारहका समय था। उसका शरीर पसीनेसे भींगा हुआ था। ज्योंही उसने प्रणाम किया इन्होंने उठाकर उसे छातीसे लगा लिया। (उस समय देखनेसे ऐसा लग रहा था, जैसे वह हिचकिचा रहा हो और ये जबरदस्ती उसे खींचे जा रहे हों।) बादमें मैंने महाराजश्रीसे कहा—'समझमें नहीं आता, कैसे आपने इस तरह पसीनेसे लथपथ व्यक्तिको अपनी छातीसे लगा लिया ?' उत्तर मिला—'अरे भाई, मुझे तो इसका ख्याल ही अब आया है, जब तुमने बताया है। मैं तो उसके प्रेमको देख रहा था, कितना कष्ट उठाकर इतनी धूपमें मुझसे मिलने आया था।' जिसको सबके हृदयमें प्रेमस्वरूप आनन्द मुकुन्दका दर्शन हो रहा हो, उसका ऐसा व्यवहार स्वाभाविक ही है।

★

केवल प्रेमपर दृष्टि

वर्षों पहलेकी एक बात है—वृन्दावनमें आश्रमके समीप दावानलकुंडकी एक गुफामें एक बहुत ही विरक्त रैदास (चमार) भक्त रहता था। सर्वथा मौन रहना, माँग कर खाना और जंगलमें सोना ही उसकी रहनी थी। इसी बीच स्वामीजीसे उसका इतना प्रेम हो गया कि रातमें जब सब लोग सो जाते (दिनमें लोग उसे आने नहीं देते थे) तब चुपकेसे आकर वह इनके पाँव दबाने लगता। उसके पास महात्मा रैदासजीकी हस्तलिखित एक पुस्तक थी, जिसे वह अपनी जटाओंमें छिपाकर रखता और किसीको दिखलाता नहीं था। कभी-कभी वह यह पुस्तक महाराजश्रीसे पढ़वाता। इनके साथ रहनेवाले ब्रह्मचारी लोग उस महात्माको कुटियामें देख लेते तो बहुत डाँटते-डपटते और कभी-कभी तो उसे ज़बरदस्ती उठाकर बाहर भी फेंक आते। इतना तिरस्कार होने पर भी वह अमानी अवसर मिलनेपर बार-बार आता। कभी-कभी रातमें आकर वह महाराजश्रीकी छातीपर अपना सिर भी रख दिया करता; परन्तु स्वामीजीने कभी उसे कुछ कहा नहीं प्रत्युत अपना अहैतुक स्नेह ही दिया। इनके इस स्वभावके कारण साथमें रहनेवाले सेवक कभी-कभी नाराज़ भी होते थे। महात्माओंके लोकोत्तर हृदयका पता सर्व साधारणको कैसे चले ?

★

क्रोध–अक्रोध

क्रोध स्वामीजीको छू तक नहीं गया है। क्रोध इनसे दूर रहता है और ये क्रोधसे। आप कहते हैं—'जिस हृदयमें क्रोधकी भट्ठी जल रही हो उसमें क्षीरसागर, शेषशय्या अथवा हिमालयमें रहनेवाले भगवान् कैसे वसेंगे।' ये स्वयं तो कभी किसीपर क्रोध करते नहीं, इनके सामने भी कभी कोई दूसरा किसीपर क्रोध करता है तो इन्हें बुखार आ जाता है। बहुत पहलेकी बात है, इनके एक घनिष्ठ मित्र थे। उनका स्वभाव थोड़ा उग्र था। लोगोंसे बहुधा उलझते रहते थे। उनके इस स्वभावके कारण मित्रता कहीं टूट न जाय, इसलिये उनसे आपने कहा, 'देखो, जब मुझसे मित्रता तोड़नी हो तभी मेरे सामने क्रोध करना, अन्यथा नहीं।' इन्हें किसीका भी किसी पर किया क्रोध जरा भी सहन नहीं होता। यों महाराजश्रीके जीवनमें भी एक बार क्रोध देखा गया है। वह घटना भी बहुत मज़ेदार है। दादाजीसे एक बार कोई चीज़ खो गयी। जब वे ढूँढ़कर हार गये और नहीं मिली तब उन्होंने हनुमानजीके लिए पाँच रुपयेका प्रसाद मान दिया। चीज़ मिल गयी। बादमें जब स्वामीजीको यह बात मालूम पड़ी तब इन्होंने दादाजीसे

कहा कि 'तुमने रुपयेकी मानता क्यों मानी ?' इनका अभिप्राय था कि साधुको रुपयेकी मानता नहीं माननी चाहिये। यदि मानना हो तो व्रत, जप, पूजा-पाठ, परिक्रमा आदि तपःसाध्य मानता करनी चाहिये। परन्तु दादाजीकी समझमें यह नहीं आकर यह आया कि ये अपने रुपये खर्च करनेके लिये मना कर रहे हैं, अतः वे आश्रमकी बन रही धर्मशालामें जाकर ईंटें तोड़नेका काम यह सोचकर करने लगे कि इस मज़दूरीसे जो पैसे आयँगे, उससे प्रसाद चढ़ायेंगे। उस समय महाराजश्रीने बड़े क्रोधसे जाकर दादाजीका गला पकड़ लिया और कहा—'अगर ऐसा किया तो ठौर ही (यहीं) मार डालूँगा। बेवकूफ! मैं पैसा खर्च करनेके लिये नहीं रोकता था, साधुको पैसेसे होनेवाले काम नहीं करने चाहिये, इसलिये रोकता था।' फिर तो दादाजी शान्त हो गये। और ये तो शान्त थे ही, थोड़ी देर बाद दादाजीको इन्होंने जो स्नेह दिया, उसका स्मरण करके दादाजी अब भी भावविभोर हो जाते हैं। महापुरुषोंका क्रोध भी कल्याणकारी होता है।

★

पैसे-पैसेका हिसाब

हिसाब-किताबके मामलेमें महाराजश्री बहुत दृढ़ हैं। ऐसा होनेपर भी कहाँसे क्या कुछ आता है, इसका पता ये नहीं रखते; पर जो हिसाब इनके सामने होता है उसमें ये पैसे-पैसेका ध्यान रखते हैं। अपने पास रहनेवालोंको किसीका एक पैसा भी अधिक नहीं रखने देते। अभी हालकी ही बात है कि किसीको एक बिलके पैसे देने थे। रुपयेके अलावा कुछ नये पैसे, देनेवालेके पास नहीं थे, अतः उसने एक रुपया दे दिया, पर आपने रुपया नहीं रक्खा। यद्यपि उसके पास भी इकट्ठे इतने पैसे नहीं थे, फिर भी इन्होंने यहाँ-वहाँसे इकट्ठे कराके पूरे पैसे वापस करा दिये। वे कहते हैं—'हिसाबकी स्वच्छतासे जीवन एवं मनमें भी स्वच्छताका—पवित्रताका सञ्चार होता है।'

प्रतिग्रहका त्याग

स्वामीजीने गृहस्थजीवनमें ही अपने वंशपरम्परागत शिष्योंसे दक्षिणा लेना छोड़ दिया था। कोई घरके लोगोंको दे आता तो वे मना नहीं करते थे। कहते थे कि हम उनके लाभको रोकनेवाले कौन हैं? इससे सालमें जो हज़ारों रुपयेकी आमदनी होती थी वह स्वाभाविक ही कम हो गयी। और फिर इन्होंने अपने बचपनसे ही यह नियम बना लिया था कि चाहे जैसी परिस्थिति होगी, कभी किसीसे ऋण नहीं लेंगे। इन दो नियमोंके कारण इन्हें कभी-कभी आर्थिक कठिनाइयाँ आयीं, परन्तु बिना विचलित हुए सारी तकलीफें इन्होंने सहीं और दृढ़तापूर्वक नियम निबाहे। घर वालोंको भी मानसिक कष्ट तो था, पर जैसे-तैसे खेती—बारीसे उनका काम चल जाता था। एक बार स्वामी श्री योगानन्दजी महाराजने महाराजश्रीसे एक लकड़ीकी चौकी मँगवाई। उस समय इनके पास रुपये नहीं थे। अतः आपने उनसे स्पष्ट कह दिया कि 'इस समय रुपये मेरे पास हैं नहीं और कर्ज मैं लेता नहीं, अतः अभी मैं चौकी लानेमें असमर्थ हूँ।' साधकके जीवनमें धनके प्रति महत्त्वबुद्धि नहीं होनी चाहिये।

★

अवैतनिक कार्य

उसके बाद जब स्वामीजी गोरखपुर अखण्ड संकीर्तनके प्रसंगमें गये और 'कल्याण'के सम्पादन विभागमें काम करने लगे, तब भी सात वर्ष तक लगातार काम करनेपर भी वहाँसे वेतनके रूपमें इन्होंने कुछ नहीं लिया। यद्यपि काम हुए बहुत बड़े-बड़े। जब कभी उनके कामसे आप बाहर जाते, तब वे लोग इनके साथ सौ-दो-सौ रुपये रख देते और लौटने पर जो कुछ बच रहता, ये उन्हें वापस कर देते थे। कैसे—क्या खर्च हुआ—यह हिसाब स्वामीजी कभी नहीं रखते थे। जो बच रहा, वही हिसाब। इसका कारण अपने खर्चके औचित्यपर विश्वास था।

सप्ताहकी दक्षिणा

श्रीमद्भागवतके अनेक सप्ताह किये, परन्तु उनमें आपने कभी; किसीसे, किसी प्रकारकी कोई दक्षिणा नहीं ली, यद्यपि नियमसे श्रवण करनेवाले श्रोताओंमें भारतवर्षके कई प्रसिद्ध करोड़पति भी थे और वे कुछ-न-कुछ देना ही चाहते थे, पर इन्होंने अपना नियम (श्रीमद्भागवत सप्ताह करनेपर कुछ नहीं लेनेका) नहीं तोड़ा। नियमके इतने कट्टर होनेपर भी आपने पूज्य स्वामी श्री प्रेमपुरीजी महाराजके प्रेमभरे आग्रहसे उनकी प्रसन्नताके लिये और उनकी सत्संगभवनकी योजनाको पूर्ण करनेके लिये आपने यह नियम तोड़ दिया। इस योजनाकी पूर्तिके लिये मुम्बादेवीके मैदानमें श्रीमद्भागवत सप्ताहका आयोजन किया गया और उसमें यह घोषणा की गयी कि सप्ताहमें प्राप्त भेंटसे वेदान्त सत्संगमण्डल सत्संगभवनका निर्माण करेगा। सप्ताह खूब धूम-धामसे हुआ और उसमें प्राप्त सब-के-सब ५०—६० हज़ार रुपये वेदान्त सत्संगमण्डलको ज्यों-के-त्यों दे दिये गये; परन्तु खेद है, मण्डलकी वह योजना ब्रह्मलीन स्वामी श्री प्रेमपुरीजी महाराजके जीवनकालमें पूरी नहीं हो सकी।

उनके देहावसानके बाद मण्डलवालोंने अधिकांश पैसे जिनसे आये थे, उन्हें लौटा दिये। शेष निधि मण्डलवालोंके संरक्षणमें ही है। उस निधिसे महाराजश्रीका कोई सम्बन्ध नहीं है। स्वामी श्री प्रेमपुरीजी महाराजके अत्यन्त प्रेमसे ही, जीवनमें एकबार, केवल एक बार इन्होंने अपने भागवत सप्ताहके समय कुछ न लेनेके नियमको तोड़ा। सप्ताहमें किसी भी प्रकारकी भेंट न लेनेके कई उदाहरण हैं। दो वर्ष पूर्व खटाउ दम्पति द्वारा आयोजित, सुन्दरबाई हॉलमें श्रीमद्भागवत सप्ताह हुआ। एक दिन किसीने अनजानमें वहाँ कुछ चढ़ा दिया। तुरन्त ही माइक्रोफोनपर घोषणा करके भेंट उसे वापस लौटा दी गयी। स्वामीजीके इसी नियम के कारण, एकबार वृन्दावनके सप्ताहमें जब किसीने सौ रुपये चढ़ा दिये तब श्री उड़ियाबाजी महाराजने, भरी सभामें, अपने हाथसे उठाकर उन्हें फेंक दिया। इसी तरह किशनपुर (देहरादून) के सप्ताहमें किसीने सवा सौ रुपये चढ़ाये, श्री आनन्दमयी मांने तत्काल ही उन्हें गरीबोंमें बाँट दिया।

लोगोंसे दक्षिणाके रूपमें स्वामीजी जो माँगते हैं वह है—

कम से कम पाँच मिनटका समय भगवान्के लिये निकाला जाय—भगवन्नामकी एक-दो माला अवश्य फेरी जायँ।

अपने घरमें कम से कम एक हाथ स्थान ठाकुरजीके लिये हो।

कम से कम एक पैसा ठाकुरजीपर न्यौछावर करके प्रतिदिन किसी गरीबको दिया जाय, और

ठाकुरजीकी कुछ न कुछ सेवा, जैसे फूल चढ़ाना, चन्दन लगाना, भोग लगाना अपने हाथोंसे अवश्य हो। और बहुत गौरवसे कहते हैं कि 'मुझे इसके सिवाय और किसीसे कुछ नहीं चाहिये। जो मुझे कुछ देना चाहता है, वह मुझे मेरा माँगा हुआ दे और यही मेरे लिये पर्याप्त दक्षिणा है।'

★

दूसरोंके सुखका ध्यान

एक बात जो महाराजश्रीमें प्रत्यक्ष दीखती है वह यह है कि ये हर समय ध्यान रखते हैं कि इनकी किसी भी क्रियासे, किसीको भी ज़रा-सा भी कष्ट न हो, भले ही स्वयं इनको उससे कष्ट हो जाय। ज़रा-सा ध्यान देनेसे हम यह इनके प्रतिदिनके जीवनमें देख सकते हैं। उदाहरणार्थ—

इनके पास कभी कोई सोया रहता है तो ये बग़ैर रोशनी किये इतने धीरे से उठते हैं कि आहट न हो और सोया हुआ व्यक्ति जग न जाय।

खानेका समय न हो, मन न हो और अनुकूल भी न हो तो भी, सामने वालेका दिल न दुख जाय, वह अपनेको अपमानित न समझ बैठे, इस ख़्यालसे खा लेते हैं। कभी-कभी तो ऐसा भी होता है कि दस-दस, पन्द्रह-पन्द्रह मिनटके अन्तरपर लोग आते रहते हैं और कुछ-न-कुछ खानेको दे ही देते हैं, तब यह जानते हुए भी कि ऐसा करनेसे पेट खराब, शरीर अवस्थ हो जायगा, दादाजीकी नाराज़गी सहकर भी खा लेते हैं। क्यों? औरोंकी खुशीके लिये ही तो।

थके हों, रक्तचाप बढ़ा हो, और आराम करना बहुत ज़रूरी हो, अथवा सोये हुए ही क्यों न हों, कोई आ जाता है तो उससे मिल लेते हैं।

अपनेको किसी प्रकारका कोई मानसिक अथवा शारीरिक कष्ट हो, तो जब तक अत्यावश्यक नहीं हो जाता, तब तक किसीको नहीं बताते; स्वयं उसे सहते रहते हैं। एक बार बदरीनाथकी यात्रा कर रहे थे। मठ चट्टीपर अँधेरेमें शौचके लिये गये। मन-दो-मनका पत्थर पैरपर गिर गया। हड्डीमें चोट लगी; परन्तु किसीको बतलाया नहीं। साथमें सात-आठ सेवक थे, यात्रा पूरी करके वृन्दावन लौटनेपर ही बतलाया। हड्डीकी गाँठ अबतक बनी हुई है। इस यात्राको चौदह वर्ष हो गये।

श्रीमद्भागवत-सप्ताह करना अति कष्टदायी है, पर फिर भी जब कोई आपसे आग्रह करता है तब वे उसे टाल नहीं सकते, मान लेते हैं। उस समय तो जो तकलीफ होती है सो होती ही है, बादमें भी इन्हें उतनी शक्ति संचित करनेमें महीनों लग जाते हैं।

महाराजश्रीका हृदय इतना कोमल है कि वे किसीकी तकलीफ सह नहीं सकते। इस प्रसंगकी एक बहुत पुरानी बात है, किसीने इनको अपना दुःख सुनाया। उसे सुननेके बाद उसका दुःख किस तरह मिटाया जाय, इस चिन्तासे आपको इतना कष्ट हुआ

जितना आज तक कभी नहीं हुआ। और उसी समय, उसके दुःखके कारण इनके अधिकांश बाल सफेद हो गये।

कई बार ऐसा भी होता है कि इनकी ही सुनायी हुई बात लोग उन्हें अपनी बनाकर सुनाते हैं। ऐसे में भी उसे सहर्ष, उत्सुकता लिये हुए ही सुनते हैं, जैसे बिल्कुल नयी ही बात हो। ये कहते नहीं कि यह मेरी कही हुई बात है, बल्कि सुनानेवालेकी याददाश्तकी प्रशंसा ही करते हैं। ऐसा ये इसीलिये करते हैं कि सामनेवाला अपमानित न हो, और उसे मानहानिका दुःख न हो।

एक बार एक स्त्री इनके पास आयी। वह पागल थी, पर इनको पता नहीं था। ऐसे में वह चाँदीके बर्तन इनको दे गयी, जो रख लिये गये। उसके जानेके बाद इनको पता चला कि वह पागल है। अब तो इनको चिन्ता हुई कि किस तरह ये बर्तन उसके पास लौटाये जायँ। दैवयोगसे उसके पति आ पहुँचे। इन्होंने उनको सब बर्तन लौटा दिये और साथ-साथ यह भी कह दिया कि अपनी पत्नीको वे यह न बतायें कि उसका दिया सामान लौटा दिया गया है, वर्ना उसे दुःख होगा यह बहुत पहलेकी बात है। अब तो वह अच्छी हो गयी है और दोनों पति-पत्नी आपके पास आते हैं।

दूसरेका ये जितना ख्याल रखते हैं, उतने ही अपने विषयमें भोले हैं। इन्हें कुछ पता नहीं रहता, न अपने खाने-पीनेका,

न पहननेका और न ही दवाका। पानी पिया है या नहीं, दवा खायी या नहीं, इतना तक भी इन्हें याद नहीं रहता। कई दफा ऐसा होता है कि पानी पी चुके होते हैं, दवा खा चुके होते हैं और कहते हैं कि 'लाओ!' और एक बार तो ऐसा हुआ कि दादाजी थे नहीं और कोई नया नाई आया। क्षौरका सामान उसको लाकर दिया गया। आपने देखा नहीं, शेविंग क्रीमके स्थानपर टूथपेस्ट लगाकर वह क्षौर करने लगा। कुछ मिनटों बाद जब जलन होने लगी तब कारण ढूँढ़नेपर पता चला कि बात यह है। कहाँ इतनी विद्वत्ता और कहाँ यह भोलापन!

इनका लोगोंके प्रति जो प्रेम है, उसका वर्णन करना भी कठिन, फिर ठीक-ठीक तो बताया ही कैसे जा सकता है—'गिरा अनयन नयन बिनु बानी,' वह तो बस देखनेका ही है। कभी इनके पास कोई रहने भी आ जाता है तो ये बहुत प्रेमसे उसका स्वागत–सत्कार करते हैं। आनेवालेकी सारी सुख-सुविधाका ध्यान ये स्वयं रखते हैं और यथाशक्ति उसके अनुकूल वातावरण बना देते हैं। एक बार की बात है कि एक सज्जन विदेशसे इनसे मिलनेके लिये वृन्दावन आये। मईका महीना था। उन दिनों स्वयं ये वहाँ उस गर्मीमें रह रहे थे। कोई बात नहीं थी, पर आनेवालेको उस भीषण गर्मीसे कष्ट न हो, इसलिये इन्होंने जहाँ

उसके ठहरनेका इन्तज़ाम किया वहाँ बर्फकी शिलाएँ भी मँगाकर रखवा दीं और कमरेका वातावरण ऐसा बना दिया कि जैसे एयरकन्डीशन्ड रूम ही हो । आनेवालेका इतना ध्यान ? वे सदासे जैसे वातावरणमें रहते हैं उसीके अनुरूप ! और जिस तरह ये बाहरी लोगोंका ध्यान रखते हैं उसी तरह अपने सेवक-भक्तोंका भी । अभी इनके एक सेवक अस्वस्थ हो गये थे, तो रात-दिन इन्हें उनकी चिन्ता रहती थी कि किस तरह, उनका क्या इलाज कराया जाय, ताकि वे अच्छे हो जायँ । अपना स्वास्थ्य बहुत अच्छा न होनेपर भी इन्होंने पास रखकर अपनी ही देखरेखमें उनका इलाज करवाया । उनको अपने हाथोंसे खिलाया-पिलाया, अपने पास ही सुलाया और स्वयं न जाने कितनी बार उनको लेकर डाक्टरके यहाँ गये इनके इस प्रेमपूर्ण प्रयत्नसे वे अब बिल्कुल स्वस्थ हो गये हैं । मैं तो समझता हूँ कि आजकी एक मां भी अपने बच्चेका ध्यान इस तरह नहीं रखती होगी ।

कोई दूसरा भी कभी बीमार हो जाता है तो ये उसकी प्रसन्नता के लिये उसको देखने उसके घर, अस्पताल तक जाते हैं । यों रोगीको तकलीफमें देखकर इनको बहुत पीड़ा होती है, पर फिर भी जब ये यह समझते हैं कि इनके जानेसे रोगीके चित्तको प्रसन्नता व हिम्मत मिलती है, तब ये रोगीकी प्रसन्नताके लिये अपना ख़्याल तक नहीं करते ।

न जाने इनमें ऐसा क्या है कि ये दुःखी मनुष्यको भी सुखी बना देते हैं। कोई कितना भी दुःखी होकर क्यों न इनके पास आया हो, पर इनके पाससे लौटता खुश होकर ही है। आने वालेको सुखकी भेंट देकर ही ये विदा करते हैं।

एक विशेष बात इनमें यह भी है कि एक बार इन्होंने जिसको अपना लिया, सदाके लिये अपना लिया। कठिनसे कठिन परिस्थिति आनेपर भी उसे त्यागते नहीं, भले ही लोग इनको भला-बुरा कहें, अथवा निन्दा करें। निन्दाके डरसे ये कभी भागे नहीं और स्तुतिके लोभसे आये नहीं। जो इन्होंने ठीक समझा वही इन्होंने किया भी। निन्दा करने वालोंका भी इन्होंने भला ही चाहा। ऐसे भी कुछ लोग थे, जो इनका अपकार करना चाहते थे, पर आपने तो ऐसोंका भी उपकार ही किया। इनके शील स्वभावका वर्णन कर सकना किसीके लिये सम्भव नहीं है। वह ब्रह्मके समान अनन्त एवं ईश्वरके समान गम्भीर है। वे अमृतके अगाध समुद्रके समान अबाध मधुर हैं, मधुरताके समान प्यारे हैं, प्यारके समान आह्लाददायी चन्द्र हैं और चन्द्र कोटिके समान शीतल। अन्तमें मैं यही कहूँगा कि जो कुछ भी इनके लिये कहा जायगा, वह सूर्यको दीपक दिखाने जैसा ही होगा। बस, भगवान्से यही प्रार्थना है कि ये स्वस्थ-प्रसन्न रहें और जुग-जुग जियें।

*

अपनी बात

अपने पूर्व जीवनमें मुझमें भक्तिके बीज तो थे, परन्तु सत्संग आदिके संस्कार नहीं थे। महाराजश्री जब पहले-पहल जबलपुर पधारे, लोगोंके बहुत आग्रह-करनेपर मैं इनके प्रवचन-श्रवणके लिये गया। प्रथम दर्शनमें ही इनका इतना स्नेह मिला कि मैं बार-बार जाने लगा। दफ़्तरसे लौटकर मैं यथाशीघ्र महाराजश्रीके पास पहुँच जाया करता। ये उद्यानकी हरी-हरी घासमें लेटे रहते। मैं इनके पेटपर सिर रख दिया करता और आप मुझे वात्सल्यसे थपथपाते। और मैं घण्टों इस तरह उनका स्नेह और दुलार पाता रहता। मेरा मन उस जीवनसे उचट गया, सतत् महाराजश्रीका सान्निध्य चाहने लगा। नौकरी मेरी फौजी थी, जिसे सात वर्ष तक न छोड़नेके नियममें मैं बँधा था। स्वामीजी जब जबलपुरसे वृन्दावनके लिये चलने लगे, मैं उनके साथ चलनेके लिये बहुत रोया। महाराजश्रीने द्रवित होकर स्वीकृति दे दी। स्टेशनपर विदा करनेवालोंकी अपार भीड़। मैं महाराजश्रीके ही कम्पार्टमेंटमें सीटके नीचे छिपकर बैठ गया। मेरे कुटुम्बियों और परिचितोंने मुझे बहुत खोजा (उस डिब्बेको भी)। महाराजश्रीसे पूछा तो

उन्होंने कहा—'अभी यहीं तो था, ढूँढ़ लो।' (महाराजश्रीको यह तो ज्ञात था कि मैं उसी ट्रेनमें जा रहा हूँ, उनके कम्पार्टमेंटमें घुसा बैठा हूँ, यह नहीं।) और इस तरह मैं परिवारकी शृंखला तोड़कर भाग निकला।

इसके बाद जो होना स्वाभाविक था, मेरी गिरफ़्तारीका वारण्ट कटा। महाराजश्रीको मैंने बतलाया, परन्तु वे डरे नहीं। मिलिटरी पुलिसमें उन दिनों अँग्रेज़ थे। वह समय स्वतन्त्रता संग्रामका था। विश्वयुद्ध छिड़ा हुआ था। मुझे अपनी गिरफ़्तारीका किंचित् भय तो था; परन्तु महाराजश्री सर्वथा निर्भय। वे पहले भी सन् ३०—३२ में कांग्रेसके सम्पर्कमें रह चुके थे। मिलिटरी पुलिसको आश्रमके आस-पास देखकर भी वे हिचकते नहीं थे। पुलिस आती और लौट जाती। बादमें मुझे बीकानेर राज्यमें श्रद्धेय भाईजी श्री हनुमान प्रसादजी पोद्दारके पास ४-५ महीनेके लिये भेज दिया गया। इसके बादसे तो मैं महाराजश्रीकी सन्निधिमें ही हूँ। इनके जीवनमें निर्भीकताके अनेक प्रसंग मैंने देखे हैं। एक बार अलीगढ़के समीपके छोटे-से स्टेशनपर मेरे साथी ब्रह्मचारीजी छूट गये। महाराजश्रीने ज़ंजीर खींची। गार्डने टिकट ले ली। ये डरे नहीं कि पैसे पास नहीं हैं, जुर्माना कैसे दिया जायगा। बादमें वह गार्ड बिना कुछ कहे-सुने टिकट वापस कर गया। केवल उसी दिन निर्भीकताके अनेक प्रसंग उपस्थित हुए थे,

जिन्हें स्वामीजीने मौजमें ही निबटा दिया। वह घटनायें 'महाराजश्रीके पत्र'के रूपमें भविष्यमें आपके सामने आयँगी।

एक बार जबलपुर जाते हुए बीनाकी गाड़ी छूट गयी, इसलिये इटारसीके रास्ते होकर जाना पड़ा। मेरे साथी छोटेजी ब्रह्मचारी भी इटारसीसे पहले अपने सर्वेंटके डिब्बेसे फर्स्टक्लासमें महाराजश्रीके पास आ गये थे। टिकट चैकरने दोनों ही अपराधोंपर स्वामीजीसे अतिरिक्त चार्ज माँगा। उन दिनों पासमें पैसा तो रखते थे नहीं, जितना वह माँगता था, उतना हम लोगोंके पास था नहीं। टिकट चैकरने इटारसीपर हम सब लोगोंको उतार लिया, और बड़ा परेशान किया। थोड़ी देर बाद महाराजश्री बोले, 'भाई हमें क्या, हमें रोटी भी खिला देना और हमारी ओरसे पैसे भी तुम्हीं चुका देना।' इनकी मस्ती और निर्भीकता देखकर वह टिकट चैकर बड़ा प्रभावित हुआ और आदर पूर्वक गाड़ीमें बिठा आया।

इसी तरह उनके वात्सल्य और करुणाके अनेक साकार रूप मेरे जीवनमें उतरे हैं। एक बार गुर्देकी भयंकर बीमारीमें महाराजश्रीने स्नेहमयी जननीकी भाँति मुझे बार-बार शौच-लघुशंका कराने और लेटाने-बैठाने, दवा देनेमें जो कष्ट उठाया, साथी ब्रह्मचारी स्वर्गीय मधुकरकी बीमारीमें उसे सम्हाला, मेरी उन्मादकी दशामें और अभी हालमें ही माधवजीकी अस्वस्थतामें उनकी

प्रतिष्ठानकी सार-सम्हालमें उन्होंने जितनी मानसिक व्यथा सही वह अवर्णनीय है।

महाराजश्रीको एक ओर जहाँ तत्त्वानुभूतिकी लोकोत्तर मनीषा प्राप्त है, वहीं अन्यत्र मनस्विता, निरभिमानता, परदुःखकातरता, सौजन्य, सहिष्णुता, संयम, समय पालन और व्यवहार कुशलता आदि अनेक गुण उनके दैनन्दिनके कार्यकलापमें परिलक्षित होते हैं। वृन्दावनमें तथा अन्यत्र मैंने कई बार उनके समीप रहकर अनुभव किया है कि भूखे, नंगे, दीन, आर्तके प्रति आपकी करुणा साकार हो उठी है। अनेक बालक आपकी शरणमें आये और विद्याध्ययन द्वारा स्वावलम्बनकी योग्यता पाकर ही गये। कितने ही कुटुम्बोंके भरण-पोषणकी चिन्ताने आपको विकल किया। धरती मां थोड़ेको बहुत करके लौटाती हैं, महाराजश्रीने वर्षों वयोवृद्ध तपःपूत एक आदरणीया माताजीका जो स्नेह चुकाया, वह वर्णनातीत है। आप इतने स्नेह-परवश हो गये थे कि वे माताजी महाराजश्रीको जैसे भी, जहाँ भी रखतीं, ले जातीं, शिशुकी भाँति वही करते थे। उनका वह वात्सल्य तथा महाराजश्रीका आत्मसमर्पण एक अनिर्वचनीय संस्मरण है।

श्री उड़ियाबाबाजी महाराज भूखोंको भोजन कराते थे। मैंने भी अक्सर देखा है जब महाराजश्री अमीर, गरीबका भेद किये बिना अपने हाथों भोजन परोसते हैं, भक्त लोग प्रेम-विह्वल

होकर बड़ी श्रद्धासे प्रसाद लेते हैं। महाराजश्रीकी सुजनता, उनका आह्लाद, उनकी घुलमिल जानेकी प्रवृत्ति साकार हो उठती है।

उनका कमलकोमल नवनीत—सा हृदय सदा ही करुणापूरित रहता है। उनके नियमित दर्शनार्थियोंमेंसे यदि एक भी कदाचित् उनके पास न पहुँच पाये तो आप चिन्तित हो उठते हैं और उसका कुशल-मङ्गल पूछते हैं। ऐसा भी हुआ है कि कोई बीमार हुआ तो कई बार उसके स्वास्थ्यकी जानकारी प्राप्त करते हैं। उनका कोमल चित्त रोगीके कष्टसे पीड़ित हो जाता है और वे बहुधा उसी रोगसे ग्रस्त हो जाते हैं, इसलिये मैं उन्हें रोगीके पास जानेसे रोकता हूँ। मैंने अक्सर उनके मुखसे सुना है कि 'रोगीके पास जानेपर मेरे मनमें आता है कि इसका रोग मैं ले लूँ और यह पीड़ासे मुक्त हो जाय।'

महाराजश्री 'मौने मौनी गुणिनि गुणवान् वाग्मिषु प्रौढ वाग्मि' हैं। उनकी बालकोंमें बालक हो जानेकी लीलायें भी दीखती हैं। ध्यानाभ्यासीके सम्मुख वे घण्टों ध्यानस्थ बैठे रहते हैं। गंगा किनारे वैराग्यकी मस्ती, अवधूतोंमें फक्कड़पन—जैसे सभी गुण समय-समयपर प्रकट होते रहते हैं। उनका जीवन व्यवहार और परमार्थमें समरस है। उनकी गुणगरिमा मेरी बुद्धिकी छोटी-सी तुलापर चढ़ती नहीं। सच्चे अर्थोंमें महाराजश्रीके बीस वर्षोंके

सतत साहचर्यमें रहकर मैं उनमें घुल-मिलकर इतना एकाकार हो गया हूँ कि उनके गुण और अवगुणोंको परख नहीं पाता, सब गुण ही गुण लगते हैं। जब किसी दूसरेके व्याजसे वे मुझे ही डाँटते-फटकारते हैं, उस समय मैं तिलमिला जाता हूँ। बादमें लगता है कि वे मेरे कितने अपने हैं! मैं तो उनका हो नहीं पाया, उन्होंने मुझे अपना बना लिया।

महाराजश्रीका यह एक छोटा-सा परिचय जो मैं उनकी ही कृपासे उनसे सुन-समझकर और अपने साथियोंके सहयोगसे लिख सका, आपके सामने प्रस्तुत है।

आनन्द मुकुन्दकी जय

सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्टकी उपलब्धियाँ:—

- माण्डूक्य प्रवचन ५)
- भक्ति-रहस्य २)
- सत्सङ्ग, साधन और फल २)
- श्रीमद्भागवत रहस्य २) द्वितीय संस्करण, प्रेसमें
- सुगम भक्तिमार्ग २)
- भगवान् के पाँच अवतार २)
- ईशावास्य प्रवचन रु. १.२५ न. पैसे
- आनन्द वाणी भाग १. ०.५० न. पैसे
- ,, ,, २. ०.५० न. पैसे (प्रेसमें)